Notes

Bachelor of Arts

Semester -2

Political Science (Major)

Indian Politics

Sub Code- 24POLM402DS01

Syllabus

Political Science (Major)

Indian Politics

Sub Code: 24POLM402DS01

Unit 1: Federalism and its Working with reference to Centre-State Relations, Demand for State Autonomy; Emerging Trends in Indian Federalism.

Unit 2: Election Commission, Electoral Process, challenges and Voting Behaviour. Electoral Reforms, Problem of Defection.

Unit 3: Party System in India: National and Regional Political Parties.

Unit 4: Role of Caste, Religion, Language, Regionalism in India, Politics of Reservation

Index	Page No.
Unit-I.	3-14
Unit-II	15-34
Unit-III	34-49
Unit-IV	49-69

Unit-I

भारतीय संघवाद (INDIAN FEDERALISM)

संघवाद का शाब्दिक अर्थ (LITERAL MEANING OF THE TERM FEDERALISM) : संघवाद शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द "फैडरलिजिम" (Federalism) का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी भाषा का शब्द फैडरलिजिम लातीनी भाषा के शब्द "फोईडस" (Foedus) से । लातीनी भाषा में फोईडस (Foedus) शब्द का अर्थ एक सन्धि (Treaty) होता है।

संघ : जब दो या दो से अधिक राज्य मिलकर एक संधि या समझौते के माध्यम से एक नए राज्य का निर्माण करते हैं, तो इस प्रकार बनने वाले राज्य में संघ कहा जाता है। इस संधि से केन्द्र और राज्य सरकार के बीच शक्तियों का विभाजन भी किया जाता है।

संघवाद की परिभाषा (Definition of Federalism)- डॉ० गार्नर के अनुसार, "संघीय प्रणाली एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें केन्द्रीय और स्थानिक सरकार एक साझी प्रभुसत्ता के अधीन होती है। केन्द्र और स्थानिक संस्थाएं अपने निश्चित क्षेत्र में सर्वोच्च होती है जो एक संविधान द्वारा निश्चित किया जाता है या संसद् के उस कानून द्वारा जिसने प्रणाली उत्पन्न की है।"

प्रश्न –

भारतीय संविधान संरचना में संघात्मक परन्तु वस्तुतः एकात्मक है

(THE INDIAN CONSTITUTION IS FEDERAL IN STRUCTURE BUT UNITARY IN SPIRIT)

अथवा

भारतीय संघवाद का स्वरूप (NATURE OF INDIAN FEDERALISM)

अथवा

भारतीय संविधान अर्द्ध-संघात्मक है (THE INDIAN CONSTITUTION IS QUASI-FEDERAL)

अथवा

भारतीय संविधान संघात्मक और एकात्मक विशेषताओं का मिश्रण है

(INDIAN CONSTITUTION IS A COMBINATION OF FEDERAL AND UNITARY FEATURES)

अथवा

भारत अनोखी किस्म का भारतीयों की परिस्थितियों के अनुसार एक संघ है

(INDIA IS UNIQUE FEDERATION ACCORDING TO THE PARTICULAR SITUATIONS OF INDIA)

(इन सभी प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित है)

संघात्मक विशेषताएं (FEDERAL FEATURES)

भारतीय संविधान की संघात्मक विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. दोहरी शासन प्रणाली (Dual Polity)- भारतीय संविधान द्वारा दोहरी शासन प्रणाली की स्थापना की गई है। भारतीय

संविधान के अनुसार भारत राज्यों का संघ है। इसमें 28 राज्य और 8 संघीय क्षेत्र (Union Territories) हैं। राज्यों के शासन का संचालन भारतीय संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार किया जाता है। संघ क्षेत्र का शासन प्रबन्ध संसद् द्वारा लिखित कानून अनुसार किया जाता है।

2. शक्तियों का विभाजन (Division of Powers) : केन्द्र तथा राज्य के मध्य शक्तियों का विभाजन संघीय सरकार की मुख्य विशेषता है। राष्ट्रीय महत्त्व वाले विषय केन्द्र को तथा स्थानीय महत्त्व के विषय राज्य सरकारों को सौंपे जाते हैं। भारत का संविधान संघीय सरकार की कसौटी पर पूरा उतरता है क्योंकि इसमें शक्तियों का विभाजन इसी आधार पर किया जाता है। भारतीय संविधान में तीन सूचियां अंकित हैं-

(i) संघ-सूची (Union List)-97 विषय (ii) राज्य-सूची (State List)-66 विषय एवं (iii) समवर्ती सूची (Concurrent List)— 47।

संघ सूची में अंकित विषयों पर केवल केन्द्रीय सरकार कानून बना सकती है तथा राज्य सूची के विषयों पर राज्य विधान सभाएं कानून बना सकती हैं। अनुवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों दोनों को कानून बनाने का अधिकार है, परन्तु यदि राज्य सरकार का बनाया हुआ कानून केन्द्रीय सरकार के कानून का विरोध करता है तो केन्द्रीय सरकार का कानून लागू किया जाएगा तथा राज्य सरकार का कानून उस सीमा तक रद्द समझा जाएगा जिस सीमा तक केन्द्र के कानून का विरोध करता है। इसके अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers) भी केन्द्र को प्रदान की गई हैं।

3. लिखित संविधान (Written Constitution) : संघीय राज्य में अलिखित संविधान कुशल प्रशासन की स्थापना नहीं कर सकता क्योंकि संघात्मक राज्य में केन्द्र तथा राज्यों की शक्तियों का विस्तृत एवं लिखित रूप में वर्णन होना अनिवार्य है। ऐसा करने से ही केन्द्र तथा राज्यों के परस्पर विवादों को संविधान के अनुसार सुगमता से निपटाया जा सकता है। भारतीय संविधान अमेरिका, स्विट्जरलैंड, फ्रांस आदि देशों के संविधानों की तरह लिखित संविधान है।

4. कठोर संविधान (Rigid Constitution)-संघीय सरकार में संविधान कठोर होना चाहिए ताकि केन्द्र या राज्यों में शासक दल अपने हितों की पूर्ति के लिए उसमें सुगमता से परिवर्तन न कर सके। भारतीय संविधान यद्यपि अमेरिका के संविधान की तरह कठोर तो नहीं है परंतु वह इंग्लैंड के संविधान की भान्ति इतना लचीला भी नहीं है ।

5. संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of the Constitution)— संविधान की सर्वोच्चता संघीय सरकार की मुख्य विशेषता है। भारतीय संविधान को देश का सर्वोच्च कानून स्वीकार किया गया है। संविधान के अनुसार बनाए गए कानूनों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। कोई भी सरकारी कर्मचारी अथवा देश का शासक उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता। संसद् या राज्य विधानमण्डल किसी ऐसे कानून का निर्माण नहीं कर सकते जो संविधान के किसी अनुच्छेद या धारा के विरुद्ध हो।

6. स्वतन्त्र न्यायपालिका (Independent Judiciary) — संघात्मक सरकार में स्वतन्त्र न्यायपालिका का होना अनिवार्य है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) तथा उत्त्व न्यायालयों (High Court) के संगठन के विषय में उपबन्ध अंकित करते समय संविधान निर्माताओं ने वे सभी सिद्धान्त अपनाने का प्रयत्न किया है जो स्वतन्त्र न्यायपालिका के लिए अनिवार्य हैं।

7. न्यायपालिका की सर्वोच्चता (Supremacy of Judiciary) — संघीय सरकार में सर्वोच्च न्यायपालिका का होना अनिवार्य है क्योंकि संघात्मक राज्य में केन्द्र तथा राज्य सरकारों में प्रायः विवाद उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसे विवादों का निर्णय निष्पक्ष तथा सर्वोच्च न्यायपालिका ही कर सकती है। भारत के संविधान में स्वतन्त्र तथा सर्वोच्च न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। संविधान की व्याख्या तथा संविधान की सुरक्षा करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्य के उच्च न्यायालयों के पास है।

8. द्वि-सदनीय विधानपालिका (Bi-cameral Legislature)- संघीय सरकार में विधानपालिका का द्वि-सदनीय होना अनिवार्य है। निम्न सदन साधारणतः समस्त लोगों तथा ऊपरी सदन संघीय इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय संसद

में भी दो सदन विद्यमान हैं।

भारतीय संविधान में एकात्मक स्वरूप की व्यवस्था (PROVISIONS OF UNITARY NATURE IN INDIAN CONSTITUTION)

उपर्युक्त विशेषताएं भारतीय संविधान के संघात्मक होने का साकार प्रमाण है, परन्तु कुछ विचारक उपर्युक्त विशेषताओं के होते हुए भी भारतीय संविधान को पूर्णतया संघीय संविधान स्वीकार नहीं करते।

डॉ० व्हीयर (Wheare) के अनुसार, "भारतीय संविधान ने एक ऐसी सरकार की स्थापना की है जो अर्द्ध-संघात्मक है तथा जो सहायक एकात्मक लक्षणों वाला संघात्मक राज्य नहीं, अपितु सहायक संघात्मक लक्षणों वाला एकात्मक राज्य है।"2

डी० डी० बसु के अनुसार, "भारतीय संविधान बनावट में संघात्मक पर वास्तव में एकात्मक है।"

निम्नलिखित विशेषताएँ भारतीय संविधान के एकात्मक स्वरूप को प्रकट करती हैं जिनके कारण भारतीय संविधान के संघात्मक स्वरूप पर संदेह किया जाता है।

एकात्मक विशेषताएं (UNITARY FEATURES)

भारतीय संविधान की एकात्मक विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. शक्तियों का विभाजन केन्द्र के पक्ष में (Division of powers in favour of the Centre)-संविधान में शक्तियों का विभाजन प्रत्येक पक्ष से केन्द्र के पक्ष में है। संघ सूची में राज्य सूची की तुलना से बड़े महत्त्वपूर्ण विषय अंकित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त संघ-सूची के विषयों की संख्या 97 है जबकि राज्य सूची में कम महत्त्व के 66 विषय अंकित हैं। अनुवर्ती सूची में कुल 47 विषय भी केन्द्र के नियन्त्रण से बाहर नहीं हैं क्योंकि दोनों केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों द्वारा उन विषयों पर कानून बनाने पर यदि दोनों के कानूनों में टकराव होता है,तो केंद्र सरकार का कानून मान्य होगा। शक्तियों का यह विभाजन प्रत्येक पक्ष से केन्द्र को शक्तिशाली बनाता है जो कि एकात्मक सरकार का मुख्य चिह्न है।

2. राज्य-सूची में केन्द्र का हस्तक्षेप (Encroachment by the Centre in the State List)-राज्य-सूची में अंकित विषय भी केन्द्र के अधिकार क्षेत्र में पूर्णतया बाहर नहीं हैं। यदि राज्यसभा दो-तिहाई बहुमत द्वारा प्रस्ताव पारित करके यह घोषित कर दे कि राज्य सूची में अंकित किसी विषय अथवा विषयों पर केन्द्रीय संसद् द्वारा कानून बनाना राष्ट्रीय हितों के लिए अनिवार्य है तो केन्द्रीय संसद् इन विषयों पर कानून बना सकती है। राज्य सभा के ऐसे प्रस्ताव की अवधि एक वर्ष होती है। इसके अतिरिक्त विदेशों के साथ किए गए समझौते या सन्धियों की पूर्ति के लिए संसद् प्रत्येक विषय पर कानून बना सकती है, चाहे वह विषय राज्य सूची में भी अंकित हो। अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति संकटकालीन घोषणा करके किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू कर सकता है। यदि किसी राज्य में अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति शासन लागू है तो उस राज्य के विषय में भी उन सभी विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद् को प्राप्त हो जाता है जो विषय राज्य सूची (State List) में अंकित हैं।

3. समवती सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने की राज्य विधानमण्डल की नाममात्र की शक्ति (Nominal Power of State Legislature on the subject given in the Concurrent List)- संविधान के अनुसार समवर्ती सूची में दिए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्रीय संसद् और राज्य विधानण्डल के पास है। इसके साथ ही संविधान में यह व्यवस्था है यदि एक समान विषयों पर केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें कानून का निर्माण कर दे तो राज्य सरकार का कानून उस सीमा तक रद्द समझा जाएगा जिस सीमा तक वह कानून केन्द्र सरकार के बनाए कानून से टकराव पैदा करता है। इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने की राज्य विधानमण्डलों की शक्ति केवल नाममात्र की है।

4. भारतीय संविधान का आपात्काल में एकात्मक बन जाना (The Constitution becomes Unitary during

Emergency)- भारतीय संविधान की अद्भुत विशेषता यह है कि संशोधन किए बिना ही उसे एकात्मक रूप दिया जा सकता है। अनुच्छेद 352 के अनुसार राष्ट्रपति आपात्कालीन स्थिति की घोषणा कर सकता है। राष्ट्रपति की ओर से आपात्कालीन घोषणा होने की अवस्था में राज्यों की स्वाधीनता को समाप्त किया जा सकता है और राज्य सरकारें भंग भी की जा सकती हैं। केन्द्रीय संसद् को राज्य सूची में अंकित विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार मिल सकता है। इस प्रकार भारतीय संविधान का संघात्मक स्वरूप संविधान में संशोधन किए बिना ही एकात्मक रूप धारण कर सकता है।

5. राज्यों के पृथक् संविधान का अभाव (No Separate Constitutions for the States) संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैंड आदि देशों में संघात्मक प्रणाली है तथा वहां राज्यों के अपने पृथक् संविधान हैं, परन्तु भारत में राज्यों को अपने पृथक् संविधान निर्मित करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। केन्द्र तथा अन्य राज्यों के लिए एक ही संविधान है जिसमें केन्द्रीय तथा राज्यों में प्रशासकीय संगठन के विषय में व्यवस्थाएं अंकित की गई हैं।

6. एकल नागरिकता (Single Citizenship) — अमेरिका तथा स्विट्जरलैंड के संविधानों में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था है। भारतीय प्रणाली में दोहरी नागरिकता की प्रथा नहीं है, बल्कि सभी व्यक्ति भारत के ही नागरिक हैं तथा सब को समानता के आधार पर संविधान की ओर से अधिकार प्राप्त हैं। किसी व्यक्ति को किसी राज्य की नागरिकता प्रदान नहीं की गई है और न ही किसी राज्य की ओर से कोई विशेष अधिकार दिए गए हैं।

7. संवैधानिक संशोधनों में संघ की श्रेष्ठता (Supremacy of the Centre in Constitutional Amendments)- संविधान में संशोधन करने के प्रति भी राज्यों की अपेक्षा केन्द्र को अधिक अधिकार प्राप्त हैं। संविधान के अधिकांश भाग को संसद् साधारण बहुमत से विशेष निश्चित विधि द्वारा संशोधित कर सकती है। संविधान का बहुत कम भाग ऐसा है जिसमें संशोधन करने के लिए कम-से-कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों का समर्थन अनिवार्य है। राज्य सरकारें स्वयं कोई संवैधानिक संशोधन नहीं कर सकतीं। यहां तक कि वे संवैधानिक संशोधन के विषय में सुझाव भी नहीं दे सकती हैं।

8. संसद् के पास नए राज्यों के निर्माण, पुनः सीमांकन तथा पुनर्गठन का अधिकार (Power for the creation of New States, making changes in the Boundaries and Reorganisation of States with the Parliament)- भारतीय संविधान के अनुसार संसद् को नए राज्यों को स्थापित करने तथा उनको संघ में सम्मिलित करने का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त संसद् किसी भी राज्य का क्षेत्र घटा-बढ़ा सकती है, किसी भी राज्य की सीमाएं परिवर्तित कर सकती है, किसी राज्य का नाम परिवर्तित कर सकती है। किसी एक राज्य का कोई भाग काट कर दूसरे राज्य के साथ मिला सकती है और एक राज्य को विभाजित करके दो राज्यों का निर्माण कर सकती है। केन्द्र की यह असीमित शक्ति संविधान की एकात्मकता की ओर झुकाव को व्यक्त करती है। अगस्त, 2000 में उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम (Uttar Pradesh Reorganisation Act), मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम (Madhya Pradesh Reorganisation Act) और बिहार पुनर्गठन अधिनियम (Bihar Reorganisation Act) पास करके उत्तराखण्ड (Uttarakhand), छत्तीसगढ़ (Chhattisgarh) और झारखंड (Jharkhand) नामक नए राज्य स्थापित किए थे।

9. संविधान में संघ शब्द का अभाव (Absence of word 'Federation' in the Constitution)-भारत के संविधान में संघ शब्द का प्रयोग किसी अनुच्छेद अथवा धारा में नहीं किया गया। प्रथम अनुच्छेद (Art. 1) में "भारत को राज्यों का संग्रह (Union of States) कहा गया है।" संविधान में संघ के शब्द का अभाव भी उसकी संघात्मकता के प्रति सन्देह उत्पन्न करता है।

10. राज्य सभा में राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व (Unequal Representation of States in Rajya Sabha)-संघीय राज्यों में द्वितीय सदन साधारणतः समानता के आधार पर राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रकार अमेरिका के द्वितीय सदन सीनेट में प्रत्येक राज्य दो प्रतिनिधि भेजता है, परन्तु भारत की राज्यसभा में राज्यों को प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर नहीं, अपितु जनसंख्या के आधार पर दिया गया है, जो संघात्मक राज्य के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है।

11. एकीकृत न्यायपालिका (Integrated Judiciary) — संघात्मक राज्यों में दोहरी न्याय प्रणाली की व्यवस्था होना अनिवार्य है, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में राज्यों की न्याय प्रणाली केन्द्रीय न्याय-प्रणाली से पृथक् है, परन्तु भारत में एकीकृत

न्यायपालिका है। देश में प्रत्येक न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय के अधीन कार्य करता है। एकल न्याय प्रणाली भी एकात्मक राज्य की मुख्य विशेषता स्वीकार की जाती है।

12. राज्यों की वित्त के प्रति केन्द्र पर निर्भरता (Financial dependence of the States on the Centre)-राज्य सरकारों के पास यद्यपि आय के अनेक साधन हैं, परंतु इन साधनों द्वारा प्राप्त किया धन राज्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं होता। धन के अभाव के कारण राज्यों को धन के लिए केन्द्र पर निर्भर रहना पड़ता है। केन्द्रीय करों में से कुछ भाग राज्यों को मिलता है। इसके अतिरिक्त राज्यों को केन्द्र की ओर से कुछ वित्तीय सहायता अनुदान के रूप में प्रदान की जाती है। वित्तीय क्षेत्र में राज्यों की केन्द्र पर निर्भरता संविधान के एकात्मकता की ओर झुकाव को दिखाती है।

13. केन्द्रीय नियोजन (Centralised Planning)-हमारे देश का नियोजन केन्द्रित है। सन्थानम (Santhanam) के विचारानुसार, "नियोजन ने संघात्मक प्रणाली का विघटन किया है और हमारा देश कई पक्षों में एकात्मक विधियों द्वारा कार्य करता है।

14. राज्य सरकारों के लिए केन्द्र का आदेश स्वीकार करना अनिवार्य है (States must abide by the Directions of the Centre)-संविधान के अनुसार प्रत्येक राज्य को अपनी कार्यकारी शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए, जिससे संसद् द्वारा बनाए गए कानून का पालन आवश्यक हो सके। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय कार्यपालिका राज्य सरकारों को आदेश भी जारी कर सकती है। कुछ ऐसे और भी अन्य उपबंध एकात्मक व्यवस्था के प्रतीक हैं।

15. राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों को नियुक्त और पदच्युत करना (Appointment and Dismissal of Governors by the President)-भारत के राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और वे राष्ट्रपति की इच्छा तक ही अपने पद पर सुशोभित रह सकते हैं। इसके विपरीत अमेरिका में राज्यपाल जनता द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं तथा निश्चित काल तक अपने पद पर स्थिर रहते हैं। राज्यों में राज्यपाल केन्द्र का प्रतिनिधि होता है तथा केन्द्र राज्यपाल द्वारा ही राज्यों पर अपना नियन्त्रण रखता है। राज्यपालों की केन्द्र द्वारा नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदमुक्ति तथा उन पर केन्द्र का नियन्त्रण संघात्मकता के नहीं, बल्कि एकात्मकता के चिह्न हैं।

16. राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की शक्ति (Power to promulgate President's Rule in States)-संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट के द्वारा अथवा किसी अन्य साधन से यह विश्वास हो जाए कि राज्य सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य नहीं कर रही है अथवा कार्य करने की अवस्था में नहीं तो राष्ट्रपति उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू करने की घोषणा कर सकता है। यदि ऐसी घोषणा कर दी जाए तो सम्बन्धित राज्य की सरकार भंग हो जाती है और राज्य का शासन राष्ट्रपति के नियन्त्रणाधीन हो जाता है। संविधान की यह व्यवस्था केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बनाती है और इस प्रकार राज्य सरकारों का अस्तित्व पर्याप्त सीमा तक केन्द्र सरकार की दया दृष्टि पर निर्भर हो जाता है, जोकि एकात्मक व्यवस्था का चिह्न है।

निष्कर्ष- भारत वास्तव में भारत की विशेष परिस्थितियां अनुसार एक अनोखा संघवाद है। अमेरिका और अनेकों देशों के संघवाद का निर्माण उन देशों की अपनी-अपनी विशेष सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक स्थितियां अनुसार हुआ है। संविधान का निर्माण करते समय भारतीय संविधानकारों को अपने इर्द-गिर्द मासूम लोगों के खून की नदियां नज़र आ रही थीं और उनको भारत अलग-अलग जातियां, धर्म, भाषायें, क्षेत्रों और अनेकों भिन्नताओं वाला देश प्रतीत हो रहा था। ऐसे देश के लिए उन्होंने एक अनोखी किस्म के संघवाद की व्यवस्था की जिसका एकाएक उद्देश्य भारत में राष्ट्रीयता की स्थापना करना था। अन्त में हम कह सकते हैं कि भारत न तो अर्ध संघात्मक और न ही एकात्मक विशेषताएं वाला संघ राज्य है बल्कि यह अपनी परिस्थितियों के अनुसार बनाया गया संघवाद न अनोखा तजुर्बा है।

केंद्र-राज्य संबंध

भारतीय संविधान में केंद्र और राज्यों के बीच तीन प्रकार के संबंधों का वर्णन हैं।

वैधानिक सम्बन्ध (Legislative Relations)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 के द्वारा समस्त वैधानिक शक्तियों को तीन सूचियों-संघ सूची, राज्य सूची एवं में विभक्त किया गया है। इन तीनों सूचियों में शामिल विषयों का विवरण संविधान की सातवीं अनुसूची समवर्ती सूची में (Schedule) में दिया गया है। इन तीनों सूचियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. संघ सूची (Union List) - संघ सूची में राष्ट्रीय महत्त्व के उन विषयों को शामिल किया गया है. जिनके सम्बन्ध में समस्त देश में एक समान नीति का पालन किया जाना आवश्यक है। इस सूची में दिए गए समस्त विषयों पर कानून-निर्माण की शक्ति संसद को दी गयी है। इस सूची में 97 विषय सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ प्रमुख विषय हैं-प्रतिरक्षा, विदेशी मामले युद्ध एवं सन्धि, नागरिकता, रेल, बन्दरगाह हवाई मार्ग, डाक, तार, टेलीफोन, मुद्रा-निर्माण, बैंक, बीमा एवं खानें।

2. राज्य सूची (State List)- राज्य सूची में उन विषयों को शामिल किया गया है, जो स्थानीय महत्त्व के हैं। सामान्यतया इस सूची में दिए गए विषयों पर कानून-निर्माण की शक्ति राज्य विधानमण्डलों को प्रदान की गयी है। इस सूची में अभी भी 66 विषय हैं, यद्यपि 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा इस सूची में से चार विषयों-शिक्षा, वन, वन्य प्राणियों की रक्षा एवं नाप-तोल को निकालकर समवर्ती सूची में शामिल कर दिया गया था। इस सूची में शामिल प्रमुख विषय हैं-पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सिंचाई एवं सड़कें।

3. समवर्ती सूची (Concurrent List)- समवर्ती सूची में उन विषयों को सम्मिलित किया गया है, जो राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। इस सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद एवं राज्य विधानमण्डलों दोनों को प्रदान किया गया है, किन्तु संसद एवं राज्य विधानमण्डलों द्वारा निर्मित कानूनों में टकराव की स्थिति में संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इस सूची में अभी भी 47 विषय शामिल हैं, यद्यपि 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा इसमें पाँच विषय जोड़ें गए हैं। इस सूची में शामिल प्रमुख विषय हैं-फौजदारी विषय एवं प्रक्रिया, निवारक निरोध, विवाह एवं विवाह-विच्छेद, दत्तक एवं उत्तराधिकार, कारखाने, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, सामाजिक बीमा, पुनर्वास एवं पुरातत्त्व।

उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान द्वारा अवशेष शक्तियाँ (Residuary Powers) अर्थात ऐसे विषय पर कानून-निर्माण की शक्तियाँ, जो विषय तीनों सूचियों में से किसी भी सूची में शामिल नहीं हैं, केन्द्र को सौंपी गयी हैं।

राज्य सूची के विषयों पर संसद की कानून-निर्माण की शक्तियाँ (Legislative Powers of Parliament on the Subjects of State List)-

संसद को राज्य सूची के विषयों पर कानून निर्माण की शक्ति निम्नलिखित परिस्थितियों में प्राप्त हो जाती है-

1. राज्य सभा के प्रस्ताव पर (On the Resolution of Rajya Sabha)- यदि अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत राज्य सभा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करके 'राज्य सूची' में शामिल किसी विषय को 'राष्ट्रीय महत्त्व' का घोषित कर दे. तो उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जात है। संसद को यह अधिकार केवल एक वर्ष के लिए ही प्राप्त होता है, किन्तु यदि राज्य सभा इस प्रस्ताव को पुनः पारित कर देती है, तो यह अवधि एक वर्ष के लिए और बढ़ जाती है। इस अवधि के समाप्त होने के बाद भी यह कानून छः माह तक लागू रह सकता है।

2. दो या दो से अधिक राज्यों के अनुरोध पर (On the Request of Two or More than Two States) - यदि अनुच्छेद 252 के अन्तर्गत दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डल प्रस्ताव पारित करके यह इच्छा जाहिर करें कि 'राज्य सूची' के किसी विषय पर संसद द्वारा कानून निर्माण किया जाना चाहिए, तो उन राज्यों हेतु उस विषय पर कानून-निर्माण का अधिकार संसद को मिल जाता है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि या समझौते के क्रियान्वयन हेतु (For the Fulfilment of International Treaty or Agreement Obligation)- अनुच्छेद 253 के तहत भारत द्वारा हस्ताक्षरित किसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि या समझौते के क्रियान्वयन हेतु संसद

'राज्य सूची' में शामिल किसी विषय पर कानून बना सकती है।

4. राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा होने पर (On the Proclamation of National Emergency) - जब अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा आपातकाल की घोषणा कर दी जाती है, तो 'राज्य सूची' में दिए गए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है, किन्तु संसद द्वारा निर्मित ऐसे कानून आपातकाल की समाप्ति के छः माह बाद तक ही प्रभावी रहते हैं। इस अवधि के बाद ये स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

5. राज्य में संवैधानिक तन्त्र के असफल होने पर (On the Failure of Constitutional Machinery in a State)- जब अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा किसी राज्य में संवैधानिक तन्त्र विफल होने की स्थिति में राष्ट्रपति सासन लागू कर दिया जाता है. तो इस अवधि में उस राज्य हेतु 'राज्य सूची' में शामिल विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को प्राप्त हो जाता है।

6. कुछ विधेयकों का राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षण (Reservation of Some Bills for Presidential Assent) - उपर्युक्त पाँचों स्थितियों के अतिरिक्त भी राज्यों की कानून निर्माण की शक्ति सीमित की गयी है। अनुच्छेद 304 (ख) के अन्तर्गत कुछ विधेयकों के लिए राज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत किए जाने से पूर्व राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी आवश्यक है। उदाहरण के लिए वे विधेयक, जिनके द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से उस राज्य के अन्दर या बाहर, वाणिज्य या मेल-जोल पर कोई प्रतिबन्ध लगाए जाने की व्यवस्था हो। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित कर सकता है और राष्ट्रपति, बिना कोई कारण बताए, उस विधेयक को अस्वीकृत कर सकता है।

7. राज्य सूची के विषयों में केन्द्र का हस्तक्षेप (Centre's Intervention in the Subjects of State List)-वैसे तो संविधान के प्रावधानों के अनुसार केन्द्र राज्यों की तुलना में अधिक शक्तिशाली है, किन्तु राज्यों द्वारा यह शिकायत भी की जाती रही है कि केन्द्र उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य जैसे विषयों पर कानून बनाने लगा है, जब कि इन विषयों को 'राज्य सूची' में सम्मिलित किया गया है।

प्रशासनिक सम्बन्ध (Administrative Relations)

संविधान के 11वें भाग में अनुच्छेद 256 से लेकर 263 तक केन्द्र एवं राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों का उल्लेख किया गया है। इन सम्बन्धों का वर्णन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है-

1. राज्यों का दायित्व (Obligation of States) — अनुच्छेद 256 के अनुसार राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करेंगे कि संसद द्वारा निर्मित कानूनों का पालन होता रहे। इसके अतिरिक्त, राज्यों का यह भी दायित्व तय किया गया है कि वे केन्द के प्रशासन में कोई बाधा उत्पन्न न होने दें।

2. केन्द्र का राज्य सरकारों को निर्देश- (Centre's Directions to State Governments)- अनुच्छेद 257 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को यह निर्देश दे सकती है कि वे अपनी प्रशासकीय शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करें कि केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति के क्रियान्वयन में कोई बाधा न आए।

3. केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों का उपयोग (Use of State Governments by the Centre)- अनुच्छेद 258 के अनुसार राष्ट्रपति राज्य सरकार या उसके पदाधिकारियों को सशर्त या बिना किसी शर्त के ऐसे मामलों से सम्बन्धित कार्य सौंप सकता है, जो केन्द्र की प्रशासनिक शक्ति की सीमा में आते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि केन्द्र द्वारा 'संघ सूची' में शामिल किसी भी विषय से सम्बन्धित कोई भी कार्य राज्य के पदाधिकारियों को सौंपा जा सकता है।

4. सार्वजनिक कृत्यों, अभिलेखों एवं न्यायिक कार्यवाहियों को मान्यता - अनुच्छेद 261 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों, दोनों का यह कर्तव्य है कि वे समस्त सार्वजनिक कृत्यों, अभिलेखों एवं न्यायिक प्रक्रिया में अपनी पूर्ण आस्था एवं विश्वास व्यक्त करें। इसके अतिरिक्त, जिन परिस्थितियों एवं तरीकों से इन कृत्यों, अभिलेखों एवं न्यायिक प्रक्रियाओं को

प्रमाणित या निर्धारित किया जाता है, उनकी व्यवस्था संसद द्वारा निर्मित कानूनों द्वारा की जाती है।

5. अन्तर्राज्यीय नदियों के जल का बंटवारा (Allocation of the Water of Inter-State Rivers) - अनुच्छेद 262 में यह व्यवस्था की गयी है कि संसद कानून बनाकर अन्तर्राज्यीय नदियों के जल के प्रयोग, वितरण अथवा नियन्त्रण या अन्तर्राज्यीय नदी घाटी के बारे में विवाद या आरोपों के निर्णय की व्यवस्था करें। इस बारे में संसद यह भी निर्धारित कर सकती है कि सर्वोच्च न्यायालय या कोई अन्य न्यायालय इस प्रकार के विवादों पर विचार न करे।

6. अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना (Formation of Inter-State Council)- राष्ट्रपति अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत सार्वजनिक उद्देश्य की दृष्टि से अन्तर्राज्यीय परिषद् (Inter-State Council) स्थापित कर सकता है। अपनी इस शक्ति का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने इसका गठन किया है और इसे निम्नलिखित कार्य सौंपे हैं- (i) राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों की जाँच करना और उनके विषय में परामर्श देना।(ii) केन्द्र एवं राज्यों के सामान्य हितों पर विचार करना। (iii) अन्तर्रान्यीय विषयों से सम्बन्धित नीतियों एवं कार्यक्रमों के समन्वय के लिए सुझाव देना।

7. अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services) - अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों की भर्ती संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है, किन्तु इन्हें राज्यों में महत्त्वपूर्ण पदों पर तैनात किया जाता है। ये अधिकारी अपना वेतन, भत्ते आदि राज्यों से प्राप्त करते हैं, जब कि इनके वेतमान आदि का निर्धारण केन्द्र द्वारा किया जाता है। इनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई संघीय लोक सेवा आयोग के परामर्श से केन्द्रीय गृह मंत्रालय द्वारा की जाती है।

8. राज्यपालों की नियुक्ति (Appointment of Governors) - संविधान के अनुच्छेद 155 अन्तर्गत राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और वह राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त ही अपने पद पर बना रह सकता है। इस नाते राज्यपाल को केन्द्र के अभिकर्ता के रूप में कार्य करना पड़ता है। वस्तुतः राज्यपाल के माध्यम से केन्द्र सरकार राज्यों को नियन्त्रित करती है।

9. बाह्य आक्रमणों एवं आन्तरिक अशान्ति से राज्यों की रक्षा (Protection of States from External Aggressions and Internal Disturbance) – अनुच्छेद 355 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार बाह्य आक्रमणों एवं आन्तरिक अशान्ति से राज्यों की रक्षा करने हेतु आवश्यक कदम उठा सकती है और यह भी सुनिश्चित कर सकती है कि राज्य सरकारें संविधान के प्रावधानों के अनुरूप कार्य करें।

10. राज्यों में राष्ट्रपति शासन (Presidential Rule in States) - अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति संवैधानिक तंत्र विफल होने पर किसी राज्य में आपातकाल की घोषणा कर सकता है। इस घोषणा के साथ ही राज्य सरकार भंग हो जाती है और राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाता है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत राष्ट्रपति ऐसी राज्य सरकार को दण्डित कर सकता है, जो केन्द्र सरकार के निर्देशों का पालन न कर रही हो।

वित्तीय सम्बन्ध (FINANCIAL RELATIONS)

वित्तीय क्षेत्र में भी संघ और राज्यों के मध्य वित्तीय साधनों का विभाजन किया गया है। भारतीय संविधान में यह विभाजन 1935 के अधिनियम में किए गए विभाजन पर आधारित है। वर्तमान विभाजन के अनुसार कुछ कर केवल राज्य सरकारों को सौंपे गए हैं। संघ द्वारा लगाए गए करों का विभाजन इस प्रकार है-

1. कुछ कर ऐसे हैं जो केन्द्रीय सरकार की ओर से लगाए और एकत्र किए जाते हैं, परन्तु उनके द्वारा एकत्र किया गया घन राज्यों को सौंप दिया जाता है। इसमें से कुछ मुख्य प्रकार हैं (i) कृषि वाली भूमि की आय को छोड़ कर शेष सम्पत्ति पर उत्तराधिकारी सम्बन्धी कर. (ii) कृषि वाली भूमि की आय को छोड कर शेष सम्पत्ति पर भू-सम्पत्ति कर (Estate Duty), (iii) रेल, समुद्र या वायु के माध्यम से ले जाने वाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा कर, (iv) रेल का किराया और वस्तुओं के भाड़े पर कर, (v) शेयर बाजार और सट्टे के सौदे पर स्टाम्प कर के अतिरिक्त अन्य कर, (vi) समाचार पत्रों में छपने वाले विज्ञापनों पर कर।

2. संघीय करों में कुछ कर ऐसे हैं, जिनको लगाती तो संघीय सरकार है परन्तु उनको एकत्र राज्य सरकार द्वारा किया जाता है

और राज्य सरकारें ही उनको व्यय करती हैं। ऐसे करों में स्टाम्प फीस, औषधियों और श्रृंगार प्रसाधन के सामान पर उत्पादन कर सम्मिलित है।

3. संघीय करों में कुछ कर ऐसे हैं जो संघीय सरकार द्वारा लगाए और एकत्र किए जाते हैं और उनको संघ तथा राज्यों में वितरित कर दिया जाता है। ऐसे करों में आय-कर आदि सम्मिलित हैं।

4. अनुदान (Grants-in-Aid)-राज्य सरकारों की आय के साधन सीमित होने के कारण उनको अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सदा धन की कमी रहती है। इसलिए संघ राज्य सरकारों को अनुदान के रूप में कुछ धन देती है। केन्द्रीय सरकार ऐसे अनुदान देते समय कुछ शर्ते निश्चित करती हैं जिनका पालन अनुदान प्राप्त करने वाले राज्य के लिए अनिवार्य होता है।

5. वित्तीय संकट (Financial Emergency)-राष्ट्रपति देश में वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। वित्तीय संकट के मध्य राष्ट्रपति राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित किए गए वित्त विधेयक को अपनी स्वीकृति के लिए मंगवा सकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति राज्यों के कर्मचारियों के वेतन और भत्तों में कमी करने का आदेश दे सकता है।

6. ऋण (Loan)-राज्य सरकारें अपने राज्य विधानमण्डलों द्वारा बनाए गए नियमों के अन्तर्गत राज्य के संचित कोष (Consolidated Fund of the States) की जमानत पर ऋण के रूप में कुछ रकम ले सकती है। राज्य सरकार भारत से बाहर विदेशों से ऋण नहीं ले सकती। Art 213

7. वित्तीय आयोग (Finance Commmission)- संविधान के आरम्भ होने के दो वर्ष भीतर और उसके पश्चात् प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् राष्ट्रपति को एक वित्त आयोग (Finance Commmission) नियुक्त करने के लिए कहा गया है, जो संघ और राज्यों में करों के विभाजन के सम्बन्ध में और संघ की ओर से राज्यों को अनुदान (Grants) देने के सम्बन्ध में सिफ़ारिशें करता है।

केन्द्र राज्यों के सम्पूर्ण सम्बन्धों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

केन्द्र राज्यों के सम्बन्धों के प्रबन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण दोष हैं जिनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है-

1. वैधानिक क्षेत्र में केन्द्र की प्रभुरात्ता (Dominance of the Centre in Legislative Field)- केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के परस्पर वैधानिक सम्बन्धों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान ने केन्द्र को वैधानिक क्षेत्र में बहुत अधिक शक्तिशाली बनाया है। संघीय सूची में अंकित विषय संख्या में पर्याप्त अधिक हैं और महत्त्व के पक्ष में भी ये विषय राज्य सूची में दिए गए विषयों की अपेक्षा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। राज्य सूची में दिये गए नियम भी केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण से मुक्त नहीं हैं। राज्य सरकार की ऐसी स्थिति संघात्मक प्रणाली की आत्मा के विरुद्ध है।

2. राज्य सरकारों के कानून राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखने की व्यवस्था (Provision for reserving State Laws for the President's Consideration) राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित किए गए कानूनों को राज्यपाल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति उन विधेयकों की स्वीकृति देने से इन्कार भी कर सकता है। केन्द्र द्वारा नियुक्त किए हुए राज्यपाल केन्द्रीय सरकार को प्रसन्न करने के लिए राज्य विधानमण्डल द्वारा पास किए गए किसी भी कानून को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रख सकता है।

3. संविधान में संशोधन करने की शक्ति केन्द्र के पास (Power of Amending the Constitution with the Centre) संविधान में संशोधन करने के सम्बन्ध में राज्य विधानमण्डल पहल नहीं कर सकते। संविधान के थोड़े-बहुत अनुच्छेद ऐसे हैं, जिनमें संशोधन करने के सम्बन्ध में राज्य विधानमण्डलों की स्वीकृति ली जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैधानिक और संवैधानिक क्षेत्र में राज्यों की अपेक्षा केन्द्र सरकार की स्थिति बहुत ही अधिक शक्तिशाली है।

4. प्रशासकीय सम्बन्धों में केन्द्र की श्रेष्ठता (Supremacy of the Centre in administrative relations)- वैधानिक क्षेत्र की भांति प्रशासनिक क्षेत्र में भी केन्द्र सरकार की स्थिति प्रभुत्व (Dominance) वाली है। राज्यपाल राज्यों के यद्यपि

संवैधानिक मुखिया होते हैं, परन्तु केन्द्र द्वारा नियुक्त होने के कारण वे मुख्य रूप में केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि होते हैं। केन्द्रीय सरकार राज्यपाल द्वारा राज्य के प्रशासन में हस्तक्षेप कर सकती है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों के उच्च पदों पर लगे अधिकारी अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी होते हैं। अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी वास्तव में केन्द्रीय सरकार के ही अधीन होते हैं। वास्तव में इन अधिकारियों द्वारा केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों पर अपना प्रभाव बनाए रखती है। संविधान के अनुसार राष्ट्रपति सम्पूर्ण देश में या किसी विशेष राज्य में आपात स्थिति की घोषणा करके राज्यों के प्रशासन को अपने हाथ में ले सकता है। यदि केन्द्रीय सरकार अनुभव करे कि किसी राज्य में केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति सुरक्षित नहीं है, तो केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय सुरक्षा पुलिस बल भेज सकती है।

5. अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग (Misuse of Article 356)- संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार राष्ट्रपति किसी भी राज्य में संवैधानिक प्रवन्ध असफल होने की परिस्थिति में राष्ट्रपति राज्य लागू कर सकता है। राष्ट्रपति राज्य लागू होने की अवस्था में राज्य सरकार भंग कर दी जाती है। अनुच्छेद 356 राज्यों के प्रशासन को केन्द्रीय सरकार के रहम पर निर्भर करने का जिम्मेवार है। इस अनुच्छेद का आश्रय लेकर केन्द्र सरकार किसी-न-किसी बहाने किसी भी राज्य सरकार को भंग कर सकती है।

6. राज्यपाल केन्द्र के प्रतिनिधि (Governors as Agents of the Central Government)- राज्यपाल की नियुक्ति केन्द्र सरकार के परामर्शानुसार राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तथा वे राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं। भारतीय राजनीतिक प्रणाली का गत अर्द्ध-शताब्दी का इतिहास इस सत्यता को प्रमाणित करता है कि अनेक राज्यपालों ने केन्द्र सरकार के संकेतों पर ऐसी कार्यवाही की है जो संसदीय प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं थी। रा

7. वित्तीय सम्बन्धों में केन्द्र का प्रभुत्व (Dominance of the centre in Financial Relations)- वित्तीय क्षेत्र में भी राज्यों की स्थिति केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा महत्त्वहीन है। राज्य सरकारों को दिए गए आय के साधन इतने कम हैं कि राज्य सरकार अपनी विकास योजनाओं और अन्य आवश्यकताओं को सुगमता से पूरी नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति होने के कारण राज्य सरकारों को केन्द्रीय सरकार से सहायता की मांग करनी पड़ती है। यदि केन्द्र और राज्यों में एक दल की सरकारें हों तो काम में अड़चन पहने की कम सम्मायना है, परन्तु यदि केन्द्र में किसी और दल की तथा राज्य में किसी और दल की सरकार हो तो वित्तीय सहायता के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार में तनाव उत्पन्न हो सकता है।

8. केन्द्रीयकृत आयोजन (Centralised Planning)- हमारे देश में आयोजन का केन्द्रीयकृत होना भी केन्द्र सरकार की श्रेष्ठता तथा राज्य सरकार की कमजोर स्थिति को अभिव्यक्त करता है। हमारे देश में एक नीति आयोग (Niti Aayoge) है, जिसके सदस्य केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। राज्यों की प्रमुख विकासशील योजनाओं का अन्तिम निर्णय भी इसी आयोग द्वारा किया जाता है। राज्य सरकार को महत्त्वपूर्ण विकासशील योजनाओं के विषय में केन्द्र सरकार की स्वीकृति लेनी आवश्यक है। ऐसी स्थिति केन्द्र राज्य के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न करने के लिए जिम्मेवार होती है।

9. नवीन राज्यों की स्थापना तथा उनकी सीमाओं में परिवर्तन करने की शक्ति (Power for the formation of new States and the alteration in their boundaries)— नवीन राज्यों की स्थापना करना तथा उन्हें संघ में सम्मिलित करने की शक्ति भी केन्द्रीय संसद् को प्रदान की गई है। इस विषय में राज्य विधानमण्डल को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

भारतीय संघवाद में उभरती प्रवृत्तियां

(EMERGING TRENDS IN INDIAN FEDERALISM)

पिछली अर्द्ध-शताब्दी से भारतीय संघवाद कार्य कर रहा है। इस समय के मध्य भारतीय संघवाद की कार्य प्रणाली ने कुछ प्रवृत्तियों चुनौतियों को हमारे सम्मुख लाया है। ऐसी कुछ प्रवृत्तियां चुनौतियां इस प्रकार हैं-

1. केन्द्रवाद (Centralism)- भारतीय संवैधानिक प्रणाली का इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि पिछली अर्द्ध-शताब्दी

से भारत में केन्द्रवाद की प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई है। केन्द्र सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए राज्य-सूची (State List) में से कई विषयों को निलम्बित करके समवर्ती सूची (Concurrent List) में शामिल किए गए है। शक्तियों का केन्द्रीयकरण न केवल सरकारी स्तर पर ही अपितु राजनीतिक दलों के स्तर पर भी हुआ है। राष्ट्रीय स्तर के लगभग प्रत्येक राजनीतिक दल की शक्तियां दल के उच्च कमान (High Command) में केन्द्रित होकर रह गई हैं।

2. राज्यों में केन्द्र का हस्तक्षेप (Interference by the Centre in the States)- भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली ने राज्यों में बढ़ रहे केन्द्रीय सरकार के हस्तक्षेप के दोष को भी प्रस्तुत किया है। राज्यों के गवर्नरों (राज्यपाल) के द्वारा राज्य के कार्यों में केन्द्र सरकार के द्वारा हस्तक्षेप करने के कई उदाहरण सामने आए हैं। इतना ही नहीं, अपितु संविधान के अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके कई राज्य सरकारों को समाप्त किया गया और वहां राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। 1977 में जनता पार्टी की सरकार ने उन 9 राज्यों की विधान सभाओं को भंग करवा कर वहां राष्ट्रपति शासन लागू किया था, जहां कांग्रेस पार्टी की सरकार कार्यरत थी। इसी प्रकार 1980 में कांग्रेस (आई) को केन्द्र सरकार ने उन 9 राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया था, जहां गैर-कांग्रेसी दल की सरकारें कार्यरत थीं।

3. राज्यों के पास वित्तीय साधनों का अभाव (Financial Paucity with the States)- राज्यों के पास आय के साधन बहुत सीमित हैं। इसी कारण राज्यों को केन्द्र की वित्तीय सहायता पर निर्भर होना पड़ता है। केन्द्र सरकार राज्यों को आर्थिक सहायता प्रदान करती है। ऐसी सहायता देने के लिए कठोर रूप में कोई निश्चित कानूनी व्यवस्था नहीं है। विरोधी दल अधिकांशतः यह दोष लगाते हैं कि केन्द्र में शासक दल राज्यों को वित्तीय सहायता देते समय एक ही नीति का पालन नहीं करता अपितु अपने राजनीतिक उद्देश्य को सम्मुख रखकर ऐसी सहायता प्रदान करता है। इसी कारण मार्च, 1983 में कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु तथा पाण्डिचेरी के मुख्य मन्त्रियों द्वारा निर्मित परिषद् (Council) ने यह मांग की थी कि केन्द्र द्वारा राज्यों को प्रदान की गई वित्तीय सहायता निश्चित कानून द्वारा नियमित होनी चाहिए।

4. दोषपूर्ण क्षेत्रीय संगठन (Defective Territorial Organisation)- भारतीय संघ के राज्यों का संगठन मुख्य रूप से भाषा के आधार पर किया गया है। परन्तु भारतीय संघवाद के पिछली अर्द्ध-शताब्दी के कार्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि राज्यों का क्षेत्रीय संगठन कुछ दोषपूर्ण है। इसी कारण कई राज्यों के लोगों द्वारा अन्य राज्यों के निर्माण की मांग की जा रही है। इस दोषपूर्ण संगठन के कारण ही कई राज्यों में परस्पर क्षेत्रीय विवाद बढ़े हैं। क्षेत्रीय विवादों के अतिरिक्त अन्तर्राज्यीय (Inter-State) नदियों के पानी के विभाजन के सम्बन्ध में भी अनेकों विवाद उत्पन्न हुए हैं।

5. अन्तर्राज्यीय परिषद् (Inter-State Council)- राज्यों में परस्पर सहयोग विकसित करने और उनके परस्पर विवादों को सुलझाने के लिए संविधान में एक अन्तर्राज्यीय परिषद् की व्यवस्था की गई है। यह परिषद् राष्ट्रपति द्वारा स्थापित की जाती है। परन्तु मई, 1990 तक इस दिशा में कोई कार्यवाही नहीं की गई थी। 28 मई, 1990 को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी करके अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना की थी। प्रधानमन्त्री इस परिषद् का अध्यक्ष है। सभी राज्यों के मुख्यमन्त्री और 6 कैबिनेट मन्त्री इसमें सम्मिलित किए गए हैं। इस परिषद् की स्थापना संघवाद की कार्यशीलता के लिए एक अच्छा कदम है।

6. नए राज्यों की मांग (Demand for New States)- भारत के पृथक् पृथक् क्षेत्रों के लोगों द्वारा पृथक राज्य बनाने की मांग काफ़ी लम्बे समय से की जा रही है। नवम्बर, 2000 में तीन नए राज्यों छत्तीसगढ़ (Chattisgarh). उत्तराखण्ड (Uttrakhand) तथा झारखण्ड (Jharkhand) का निर्माण किया गया था। जून, 2014 में तेलंगाना राज्य का निर्माण किया गया था। इन राज्यों के निर्माण के पश्चात् दूसरे क्षेत्रों के लोगों की तरफ से पृथक् राज्य बनाने की मांग और अधिक तीव्र हो गई। विहार में मैथिली प्रदेश (Maithily Pradesh), उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड (Bundel Khand) और हरित प्रदेश (Harit Pradesh), महाराष्ट्र के विदर्भ (Vidarbha), कर्नाटक में कोडवा (Kodva), असम में बोडोलैण्ड (Bodoland), पश्चिमी बंगाल में गोरखालैण्ड (Gorkhaland) राज्य बनाने की मांग की जा रही है।

7. केन्द्र की अत्यन्त शक्तिशाली स्थिति (The position of Centre very strong)- प्रत्येक पक्ष में केन्द्र की वर्तमान स्थिति पर्याप्त शक्तिशाली है। केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 356 का अक्सर प्रयोग करके अनेकों बार संघवाद के सिद्धान्तों की अवहेलना की है। अनेक बार केन्द्रीय सरकार ने राज्यपालों द्वारा उनका दुरुपयोग किया है। आलोचकों का विचार

है कि इस अनुच्छेद का सहारा लेकर केन्द्रीय सरकार ने विरोधी दलों की सरकारों को राज्य में प्रफुल्लित नहीं होने दिया तथा राज्यों में संवैधानिक ढांचे की असफलता के पर्दे के पीछे संघवाद के सिद्धान्तों का खुला उल्लंघन किया गया था, विरोधी दल भी यह दोष लगाते थे कि केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त राज्यों के राज्यपालों ने भी केन्द्रीय सरकार के निर्देश के अनुसार ही रिपोर्ट दी थी। इसके अतिरिक्त नियोजन के केन्द्रित होने तथा राज्यों की केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता के कारण केन्द्र प्रत्येक पक्ष से राज्यों की अपेक्षा बहुत अधिक शक्तिशाली बनता जा रहा है।

8. केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों के पुनर्निर्धारण की मांग (Demand for the Re-organisation of Centre-State relations) केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति के बढ़ने के कारण यह मांग बहुत जोर पकड़ रही है कि केंद्र - राज्यों के सम्बन्धों पर पूर्ण रूप में पुनः विचार किया जाए। इन सम्बन्धों का सर्वेक्षण और विश्लेषण इस तथ्य के प्रसंग में किया जाना चाहिए कि भारतीय संघवाद प्रणाली में राज्यों की स्थिति को शक्तिशाली बनाने की तत्काल आवश्यकता है। इसी कारण दोनों भारतीय साम्यवादी दल, शिरोमणि अकाली दल, डी० एम० के० (D.M.K.), नेशनल कान्फ्रेंस (National Conference), जनता पार्टी, तेलुगू देशम आदि राजनीतिक दल राज्यों की और अधिक शक्तियां सौंपने की जोरदार मांग कर रहे हैं। शिरोमणि अकाली दल, डी० एम० के० और कुछ अन्य क्षेत्रीय दल तो राज्य की स्वायत्तता (State Autonomy) पर जोर दे रहे हैं। 27 अप्रैल, 2007 को केन्द्र की संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन की सरकार के द्वारा पूर्व मुख्य न्यायाधीश मदन मोहन पुंछी की अध्यक्षता में एक नया आयोग केन्द्र राज्य सम्बन्धों के पुनर्निर्धारण हेतु गठित किया गया था।

9. राज्यपालों की पक्षपाती भूमिका (Partisan Role of the Governors)- केन्द्र सरकार के संकेतों पर कई राज्यों के राज्यपालों ने विरोधी दलों की सरकारों को समाप्त करने में अलोकतन्त्रीय भूमिका अभिनीत की है। 21 फरवरी, 1998 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भण्डारी ने भारतीय जनता पार्टी की कल्याण सिंह के नेतृत्व वाली सरकार को विधानसभा में अपना बहुमत सिद्ध किए बिना ही भंग कर दिया था क्योंकि उसकी सहयोगी लोकतांत्रिक कांग्रेस ने उस सरकार से अपना समर्थन वापिस ले लिया था। परन्तु सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर कल्याण सिंह ने विधानसभा में 26 फरवरी, 1998 को अपना बहुमत सिद्ध कर दिया था। इसी तरह का घटनाक्रम फरवरी, 2005 को गोवा राज्य में राज्यपाल एस० सी० जमीर ने दोहराया और भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली मनोहर पारिकर सरकार को बर्खास्त कर दिया था। इस समस्त घटनाक्रम में राज्यपाल की भूमिका सन्देहपूर्ण थी। इस तरह अन्य उदाहरण और भी हैं। यह सब कुछ संघवाद के आदर्शों के विरुद्ध है। इसी कारण कई आलोचक राज्यपाल की पदवी को समाप्त करने की मांग करते हैं।

10. संघवाद की कार्यप्रणाली का नवीन रूप (New form of working of Federalism) - 1989 के पश्चात् भारत में संघवाद की कार्यप्रणाली का एक नवीन रूप उभरना आरम्भ हुआ था और वह रूप धीरे-धीरे भारतीय राजनीतिक प्रणाली की अटूट विशेषता बनता जा रहा है। इस नवीन रूप के उभरने में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की बढ़ती संख्या और महत्ता का विशेष हाथ है। कोई भी ऐसा राष्ट्रीय राजनीतिक दल नहीं है जिसने पृथक् पृथक् क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के साथ राजनीतिक समझौते न किए हों प्रथम समूह का नेतृत्त्व कांग्रेस कर रही है जिसमें दो राष्ट्रीय व कई क्षेत्रीय राजनीतिक दल कांग्रेस के साथ सहयोग कर रहे हैं। द्वितीय समूह में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन में शामिल दल आते हैं। जिसमें एक राष्ट्रीय स्तर का तथा कई क्षेत्रीय दल शामिल हैं। तृतीय समूह में वामपंथी दल आते हैं वर्तमान समय ने भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली को एक नवीन रूप प्रदान किया है। प्रत्येक क्षेत्रीय दल अपने दल अपने समूह के सहयोगी दलों से अपने क्षेत्रीय हितों की सुरक्षा के लिए दबाव डालता है।

1967 से पहले वाला युग नहीं रहा है, जब केंद्र और राज्यों में कांग्रेस का राजनीतिक एकाधिकार (Political Monopoly) था और दिल्ली में बैठे हुए दिल्ली हाई कमान के कुछ नेता ही केंद्र और सभी राज्य सरकारों को चला रहे थे। भारतीय संघवाद का सही रूप उस समय से हमारे सामने आना आरम्भ हुआ है जब से राज्य दलों ने राज्यों में अपनी सरकारें बनाई हैं और केंद्र में सहयोगी दल बने हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) - उपर्युक्त वर्णन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारतीय संघवाद में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक प्रबल है। इस प्रवृत्ति के प्रतिक्रम के कारण ही राज्यों को आमतौर पर अधिक शक्तियां और विशेष रूप से वित्तीय स्वाधीनता देने की मांग भी ज़ोर पकड़ रही है। वर्तमान परिस्थितियों को सम्मुख रखते हुए हमारा यह सुझाव है कि कम-से-कम वित्तीय क्षेत्र में राज्य सरकारों को अधिक आर्थिक स्वायत्तता प्राप्त होनी चाहिए।

Unit-II

भारतीय चुनाव प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of Indian Electoral System)

भारतीय चुनाव (निर्वाचन) प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. संयुक्त निर्वाचन प्रणाली (Joint Electorate System)- ब्रिटिश सरकार ने 'फूट डालो और राज करो' की अपनी नीति के तहत 1909 के भारत शासन अधिनियम के द्वारा देश में पृथक निर्वाचन प्रणाली लागू की थी. जिसको परिणति 1947 में देश के विभाजन में हुई। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने भारत में संयुक्त निर्वाचर प्रणाली लागू की। संविधान के अनुच्छेद 325 में यह व्यवस्था की गयी है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए सामान्य मतदाता सूचियाँ होंगी और कोई भी व्यक्ति धर्म, नस्ल, जाति या लिंग के आधार पर इन मतदाता सूचियों में अपना नाम दर्ज करवाने के अयोग्य नहीं होगा।

2. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise)- भारत में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्रणाली अपनायी गयी है। यहाँ प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के, मत देने का अधिकार दिया गया है। इसका अभिप्रायः यह हुआ कि 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुका प्रत्येक नागरिक चुनावों में मतदान कर सकता है।

3. एकल-सदस्यीय निर्वाचन-क्षेत्र (Single-Member Constituencies) - भारतीय चुनाव प्रणाली की एक अन्य विशेषता है-एकल-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले भारत में कुछ निर्वाचन क्षेत्र दो-सदस्यीय होते थे, जिनमें एक सदस्य आम जनता द्वारा चुना जाता था और दूसरा आरक्षित वर्गों द्वारा, किन्तु अब ऐसा नहीं किया जाता। वर्तमान में विधानसभा तथा लोकसभा कि प्रत्येक सीट पर एक सदस्य ही चुनाव जीत कर आता है।

4. सीटों का आरक्षण (Reservation of Seats)- संविधान के अनुच्छेद 320 एवं 382 के तहत क्रमशः लोक सभा एवं विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए कुछ सीटें आरक्षित की गयी हैं। आरम्भ में इसके लिए सीटों का आरक्षण 10 वर्ष अर्थात 1960 तक किया गया था, लेकिन विभिन्न संशोधन अधिनियमों द्वारा इस अवधि को 10-10 वर्ष के लिए बढ़ाया जाता रहा। 104वें संशोधन अधिनियम (2019) के द्वारा यह अवधि बढ़ाकर 2030 तक कर दी गयी। वर्तमान में लोक सभा की 84 सीटें अनुसूचित जातियों और 47 सीटें अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित हैं।

5. ऐच्छिक मतदान (Voluntary Voting)- भारत में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्रणाली लागू की गयी है, किन्तु चुनावों में मतदान करना या न करना मतदाताओं की इच्छा पर छोड़ दिया गया है। यही कारण है कि किसी भी चुनाव में शत-प्रतिशत मतदाता मतदान नहीं करते हैं। कभी-कभी चुनाव में मतदान का प्रतिशत बहुत ही कम रहता है।

6. नोटा का प्रावधान (Provision of NOTA)- सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशानुसार चुनाव आयोग ने मतदाताओं के लिए चुनावों में नोटा (None of the Above) विकल्प लागू कर दिया है। इसका अर्थ यह है कि यदि किसी मतदाता को ऐसा लगे कि किसी चुनाव में निर्वाचन क्षेत्र में खड़े सभी उम्मीदवार उसे पसंद नहीं हैं,, तो वह सभी उम्मीदवारों को नकारने के उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में दर्ज या मतदान-पत्र में अंकित इस विकल्प का प्रयोग कर सकता है और सभी उम्मीदवारों को अस्वीकार कर सकता है। वस्तुतः यह एक प्रकार का नकारात्मक मतदान है।

7. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष चुनाव (Direct and Indirect Elections)- भारत में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार के चुनाव होते हैं। यहाँ लोक सभा, तीनों स्तर की ग्रामीण एवं शहरी शासन संस्थाओं के सदस्यों के प्रत्यक्ष चुनाव होते हैं अर्थात् इनके चुनाव में मतदाता प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। लेकिन यहाँ, राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति एवं राज्य सभा के सदस्यों के अप्रत्यक्ष चुनाव होते हैं अर्थात् इनके चुनावों में मतदाताओं द्वारा चुने गए जन प्रतिनिधि भाग लेते हैं।

8. गुप्त मतदान प्रणाली (Secret Ballot System)- भारत में सभी चुनावों के लिए गुप्त मतदान प्रणाली लागू की गयी है। ऐसा इसलिए किया गया है, ताकि मतदाता निर्भीक रूप से अपनी पसन्द के उम्मीदवार या राजनीतिक दल के पक्ष में मतदान कर सकें और उम्मीदवारों को यह पता न लग पाए कि किस मतदाता ने किस उम्मीदवार को अपना मत दिया है, ताकि झगड़े एवं मनमुटाव न उत्पन्न हो पाए। किन्तु क्रास वोटिंग को रोकने के उद्देश्य से जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 2003 के द्वारा सरकार ने राज्य सभा के चुनावों के लिए खुली मतदान प्रणाली लागू कर डाली है।

9. आनुपातिक प्रतिनिधित्व एवं एकल संक्रमणीय मत (Proportional Representation and Single Transferrable Vote)- भारतीय संविधान में राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के चुनाव के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व एवं एकल संक्रमणीय मत प्रणाली के प्रयोग की व्यवस्था की गयी है। इनके चुनावों के लिए अलग-अलग राज्यों के विधायकों के मतों का मूल्य इन राज्यों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर तय किया जाता है। राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति चुने जाने वाले उम्मीदवार मतों का निर्धारित कोटा प्राप्त कर सकें, इसके लिए एकल संक्रमणीय मत प्रणाली लागू की गयी है, जिसमें निर्वाचकमण्डल के सदस्य उम्मीदवारों के नाम के आगे अपनी प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पसन्द मत-पत्र पर अंकित करते हैं। यदि प्रथम पसन्द के आधार पर किसी उम्मीदवार को मतों का कोटा प्राप्त नहीं होता, तो सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार के मत-पत्रों को द्वितीय पसन्द के आधार पर बाकी उम्मीदवारों में विभक्त करके मतगणना की जाती है। यह क्रम तब तक जारी रहता है. जब तक किसी उम्मीदवार को मतों का कोटा प्राप्त नहीं हो जाता है।

10. सर्वाधिक मतों के आधार पर चुनाव परिणाम (Election Result on the Basis of Highest Number of Votes) - भारत में राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के चुनावों को छोड़कर बाकी किसी भी चुनाव में विजयी रहने वाले उम्मीदवार को मतों का कोटा अर्थात् मतों को निर्धारित संख्या, प्राप्त नहीं करना होता है। यहाँ बाकी चुनावों के लिए 'जो सबसे आगे वहीं जीते' (First Past the Post System) प्रणाली अपनायी गयी है. जिसका अर्थ होता है-चुनाव में उम उम्मीदवार को विजयी घोषित करना, जो मर्वाधिक मत प्राप्त करता है। इस प्रणाली के तहत सफल रहे उम्मीदवार का मतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं करना होता है, बल्कि सभी उम्मीदवारों से अधिक मत प्राप्त करने होते हैं।

11. एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव (Election from More than One Constituency)-पात्र उम्मीदवार लोक सभा या राज्य विधान सभा के चुनावों में एक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों में अपना नामांकन पत्र कर देते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं, ताकि लोक सभा या राज्य विधान सभा की सदस्यता प्राप्त करने की अधिक सम्भावना रहे। यह एक अनुचित प्रवृत्ति है. इसीलिए जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996 में यह व्यवस्था कर दी गयी है कि कई भी व्यक्ति लोक सभा या राज्य विधान सभाओं के लिए दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से एक साथ चुनाव नहीं लड़ सकता है। ऐसे व्यक्ति को दोनों निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव जीतने की स्थिति में एक निर्वाचन क्षेत्र से अपना त्याग-पत्र देना होता है।

12. चुनाव व्यय पर सीमा (Limit on Election Expenditure)- लोकतन्त्र को गरिमा बनाए रखने और राजनीतिक भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण लगाने के लिए चुनाव व्यय पर सीमा लगाना आवश्यक है। इसीलिए भारत में लोक सभा राज्य विधान सभाओं एवं स्थानीय शासन संस्थाओं का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए चुनावों में व्यय की बाते वालो धन-राशि की सीमा निर्धारित कर दी गयी है। सरकार ने फरवरी, 2011 में एक अधिसूचना जारी करके लोक सभा के उम्मीदवारों के लिए व्यय-सीमा बढ़ाकर 40 लाख रुपए और विधान सभा के लिए बढ़ाकर 16 लाख रुपए कर दी थी। 16वीं लोक सभा के चुनावों के अवसर पर लोक सभा के उम्मीदवारों के लिए व्यय-सीमा 40 लाख रुपए से बढ़ाकर 70 लाख रुपए कर दी गयी लेकिन 6 जनवरी, 2022 को 70 लाख की राशि बढ़ाकर 95 लाख कर दी गयी। इसी प्रकार विधान सभाओं के लिए यह धन राशि 28 लाख कर दी गयी।

13. अपराधियों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध (Restriction on Criminals on Contesting Elections)- राजनीति में अपराधी तत्त्वों के प्रवेश को रोकने के उद्देश्य से चुनाव आयोग द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि किसी भी प्रकार का चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी को अपना नामांकन पत्र दाखिल करते समय इसके साथ एक शपथ-पत्र भी प्रस्तुत करना होगा, जिसमें

उसकी आपराधिक पृष्ठभूमि (यदि कोई हो) का सम्पूर्ण विवरण दिया होगा। नवीन व्यवस्था के अनुसार ऐसा व्यक्ति, जिसे किसी अपराध में दो वर्ष की सजा सुनायी गयी हो. और उसने इसके विरुद्ध किसी उच्चतर न्यायालय में अपील दायर कर रखी हो, भी चुनाव नहीं लड़ सकता है।

14. चुनाव याचिका (Election Petition)- यदि किसी चुनाव में पराजित कोई उम्मीदवार यह अनुभव करता है कि विजेता उम्मीदवार ने चुनाव जीतने के लिए अनुचित साधनों का सहारा लिया है या चुनाव में किसी प्रकार की धांधली हुई है, तो वह चुनाव परिणाम घोषित किए जाने के छः महीने के भीतर सम्बन्धित उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है। उल्लेखनीय है कि प्रधान मंत्री इन्दिरा गाँधी के 1971 के लोक सभा चुनाव को पराजित उम्मीदवार राज नारायण ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनौती दी थी और उच्च न्यायालय की एकल-सदस्य खण्डपीठ ने इन्दिरा गाँधी के तांक सभा चुनाव को जून, 1975 में अवैध ठहराया था।

भारतीय चुनाव प्रणाली में दोष (Defects in Indian Electoral System)

भारतीय चुनाव प्रणाली के मुख्य दोष या कमजोरियाँ निम्नलिखित हैं-

1. राजनीतिक दलों को प्राप्त सीटों एवं मतों में अंतर (Disparity between the Seats and the Voles Acquired b by Political Parties)- भारतीय चुनाव प्रणाली का एक मुख्य दोष यह है कि किसी निर्वाचन-क्षेत्र में उस उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किया जाता है, जिसे अन्य उम्मीदवारों से अधिक मत प्राप्त होते हैं, भले ही पराजित उम्मीदवारों को मिले मतों का योग विजयी उम्मीदवार को मिले मतों के योग से अधिक हो। वर्तमान चुनाव प्रणाली के तहत प्रायः उस राजनीतिक दल को सरकार बनाने का अवसर दिया जाता है, जिसे लोक सभा या राज्य विधान सभा के चुनावों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है। ऐसे दल को समस्त मतदाताओं का बहुमत प्राप्त नहीं होता और उसे प्राप्त हुआ मत-प्रतिशत विपक्षी दलों को मिले कुल मत-प्रतिशत की तुलना में काफी कम होता है। आज तक केन्द्र में सरकार का गठन करने वाले किसी भी दल को कुल मतों का 50 प्रतिशत प्राप्त नहीं हुआ है । इसी प्रकार 2014 में सम्पन्न 16वीं लोक सभा के चुनावों में भारतीय जनता पार्टी को 31.20 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे, जब कि यह लोक सभा की 282 सीटों पर विजयी रही थी। इसके विपरीत, इन चुनावों में कांग्रेस पार्टी को 19.40 प्रतिशत मत मिले थे, किन्तु यह मात्र 44 सीटों पर ही विजयी रही थी।

2. चुनावों में धन की बढ़ती हुई भूमिका (Increasing Role of Money in Elections)- भारत में सभी प्रकार के चुनावों में धन की भूमिका बढ़ती जा रही है। हमारे संविधान निर्माता इस विषय में पहले से सजग थे. इसलिए यहाँ लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं के चुनावों के लिए खर्च की जाने वाली राशि की सीमा निश्चित की गयी। वर्तमान में लोकसभा के लिए यह राशि जनवरी, 2022 में 95 लाख रुपये कर दी गयी थी। भारत में उम्मीदवारों द्वारा चुनावों में पैसा पानी की तरह बहाया जाता है। कई बार पैसा देकर मत भी खरीदे जाते हैं। भारत में चुनावों में प्रायः काले धन का प्रयोग होता है।

3. सरकारी तन्त्र का दुरुपयोग (Misuse of Official Machinery) - भारतीय चुनाव प्रणाली का एक दोष यह है कि चुनावों में सत्तारूढ़ दल सरकारी तन्त्र का खुलकर प्रयोग करता है। मतदाताओं को सत्तारूढ़ दल की ओर आकर्षित करने के लिए प्रायः चुनावों से पहले मंत्रियों एवं उच्च अधिकारियों द्वारा स्कूलों, अस्पतालों, पुलों आदि के शिलान्यास किए जाते हैं। यद्यपि 1996, 1998 एवं 1999 में हुए लोक सभा चुनावों के समय चुनाव आयोग द्वारा इस प्रकार की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाया गया था, किन्तु इन्हें अभी तक पूर्ण रूप से समाप्त नहीं किया जा सका है।

4. निर्वाचन अधिकारियों पर अनुचित दबाव (Undue Pressure on Election Officers) - प्रायः ऐसा देखने में आया है कि केन्द्र एवं राज्यों में सत्तारूढ़ दल चुनावों से जुड़े अधिकारियों पर अनुचित दबाव डालकर अपने हितों को साधने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ चुनावों के पहले और चुनावों के बाद निर्वाचन अधिकारियों को तंग करने की शिकायतें भी अक्सर सुनने में आती हैं। भूतपूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन द्वारा इस सम्बन्ध में प्रभावी कदम उठाए गए थे, जिनसे स्थिति में काफी सुधार हुआ, किन्तु अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

5. मतदाता सुचियों में हेर-फेर (Defects in Electoral Rolls) चुनावों से पहले सत्तारूढ़ दल द्वारा मतदाना सूचियों में फेरबदल कराना भी भारतीय चुनाव प्रणाली का एक मुख्य दोष है। मतदाता सूचियों को दोहराने के नाम पर विपक्षी दलों के समर्थक मतदाताओं के नामों को मतदाता सूचियों से निकालने और अपने समर्थकों के नामों को मतदात सूचियों में जोड़ने की अक्सर आती रहती हैं।

6. चुनावों में स्वतन्त्र उम्मीदवारों की बढ़ती संख्या (Independent Candidates in Elections) - भारतीय चुनाव प्रणाली का एक और दोष है-चुनावों में स्वतन्त्र या निर्दलीय उम्मीदवारों का खड़ा होना। चुनावों में निर्दलीय उम्मीदवार कई प्रकार की कठिनाइयाँ पैदा कर देते हैं। अधिकतर स्वतन्त्र उम्मीदवार चुनाव सिर्फ नाम बनाने के लिए ही चुनावों में खड़े होते हैं । इन उम्मीदवार के पास अपनी कोई विचारधारा या दृष्टिकोण नहीं होता है।

7. मतदाताओं का मताधिकार का प्रयोग न करना (No Casting of Vote by Voters) - भारत में चुनावों में बहुत से मतदाता मतदान नहीं करते हैं, क्योंकि ये चुनावों में रूचि नहीं लेते हैं। वस्तुतः यह प्रवृत्ति चुनावों की वैधता पर प्रश्न चिह्न लगा देती है। यहाँ 60-65 प्रतिशत मतदाता ही मतदान करते हैं, जिसके कारण कम मत प्राप्त करने बाले दल को चुनावों में अधिक सीटें मिल जाती है। उदाहरण के लिए 13वीं लोक सभा के चुनावों में 59.08 प्रतिशत और 14वीं लोक सभा के चुनावों में 57.86 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया था।

8. वापस बुलाने की व्यवस्था का न होना (No Provision for Recall System)- स्विट्जरलैण्ड में जो जन प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं रहते, उन्हें उनके पद के दायित्व से मुक्त कर दिया जाता है, लेकिन यह व्यवस्था हमारे यहाँ लागू नहीं है। इस व्यवस्था के अभाव में कई जन प्रतिनिधि विधानमण्डलों के भीतर एवं बाहर अनुत्तरदायीपूर्ण व्यवहार करते देखे जाते हैं। ये न तो विधानमण्डलों की बैठकों में शामिल होते हैं और न ही सदन के पटल पर वाद-विवाद में भाग लेते हैं। वस्तुतः ये अपने निर्वाचन क्षेत्र की जनता के प्रति समर्पित नहीं होते हैं।

9. उम्मीदवारों के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता का अभाव (Lack of Minimum Educational Qualifications for Candidates)- भारतीय चुनाव प्रणाली का एक अन्य दोष यह है कि यहाँ किसी भी पद के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता निर्धारित नहीं की गयी है। ऐसी स्थिति में अशिक्षित उम्मीदवार चुनाव लड़ते हैं और विजयी होने पर कानून-निर्माण का कार्य भी करते हैं।

10. उम्मीदवारों के लिए अधिकतम आयु-सीमा नहीं (No Maximum Age-Limit for Candidates)- जन प्रतिनिधि अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत अलग-अलग पदों के लिए चुनाव लड़ने हेतु उम्मीदवारों की न्यूनतम आयु निर्धारित की गयी है: अधिकतम आयु नहीं। जब सरकारी कर्मचारी को 58 या 60 वर्ष की आयु पूरी करने पर सेवा-निवृत्त कर दिया जाता है, तो फिर चुनाव लड़ने के लिए भी अधिकतम आयु सीमा निर्धारित की जानी चाहिए।

11. चुनाव याचिकाएँ (Election Petitions)- भारतीय चुनाव प्रणाली का एक दोष यह है कि चुनावों में हुई धांधलियों के विरुद्ध जो याचिकाएँ उच्च न्यायालयों में दायर की जाती हैं, उनका निर्णय होने में कई वर्ष लग जाते हैं। कभी-कभी तो इन पर निर्णय तब आता है, जब या तो सदन का कार्यकाल पूरा हो गया होता है या कार्यकाल पूरा होने में चार-छः महीने ही शेष रह जाते हैं।

12. चुनावों में बहुत अधिक उम्मीदवार (Many Candidates in Elections)- भारत में लोक सभा या विधान सभाओं के चुनाव लडना प्रतिष्ठा का मामला माना जाता है। इसलिए यहाँ कुछ उम्मीदवार केवल चुनाव लड़ने के लिए ही चुनाव लड़ते हैं। यही कारण है कि यहाँ चुनावों में खड़े होने वाले उम्मीदवारों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। उदाहरण के लिए 13वीं लोक सभा चुनावों में उम्मीदवारों की संख्या 4648 थी, जो 15वीं लोक सभा चुनावों में बढ़कर 8070 हो गयी। इसी प्रकार 16वीं लोक सभा के चुनावों में उम्मीदवारों की संख्या 8251 तक जा पहुँची।

13. आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवार (Candidates with Criminal Background in Election Fray)- यद्यपि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन करके अपराधी लोगों को चुनावों में खड़े न होने से रोकने का प्रयास किया गया

है, किन्तु अभी भी आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति चुनावों में उम्मीदवार बन जाते हैं, क्योंकि दो या दो से अधिक वर्ष की सजा सुनाए गए अभियुक्त ही चुनाव लड़ने के अयोग्य होते हैं; न कि वे अभियुक्त जिनको चुनाव लडने के समय तक सजा नहीं सुनायी गयी है। 'एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स' (ADR) ने सांसदों द्वारा प्रस्तुत शपथ-पत्रों का अध्ययन करके बताया कि 16वीं लोक सभा में 186 सांसद ऐसे थे, जिनके विरुद्ध न्यायालयों में आपराधिक मामले लम्बित थे। इस संस्था की रिपोर्ट के अनुसार 17वीं लोक सभा में 233 सांसदों के विरुद्ध न्यायालयों में आपराधिक मामले लम्बित हैं।

14. कुछ अन्य दोष (Some Other Defects) : उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त, भारतीय चुनाव प्रणाली में कुछ अन्य दोष भी हैं: जैसे-

(i) चुनावों में फर्जी मतदान का होना। (ii) उम्मीदवारों द्वारा चुनाव नियमों का उल्लंघन किया जाना।

(iii) चुनाव अधिकारियों द्वारा पक्षपात किया जाना। (iv) चुनाव आयोग के पास अपना स्वतन्त्र कर्मचारी वर्ग न होना।

(v) मतदान केन्द्रों पर अवैध कब्जा किया जाना। (vi) डाक मत-पत्रों (Postal Ballot Papers) के लिए समुचित व्यवस्था न होना।

चुनाव सुधार (Electoral Reforms)

भारतीय चुनाव प्रणाली के उपर्युक्त दोषों को देखते हुए सरकार द्वारा समय-समय पर गठित विभिन्न समितियों एवं चुनाव आयोग ने इस बारे में अनेक सुझाव दिए हैं। इसके अलावा, इस विषय में समय-समय पर न्यायालयों द्वारा भी दिशा-निर्देश दिए गए हैं। चुनाव-प्रणाली में सुधारों के विषय में सुझाव देने के लिए सरकार एवं अन्य संस्थाओं द्वारा निम्नलिखित समितियाँ गठित की गयी हैं-

तारकुण्डे समिति- 'सिटीजन फॉर डेमोक्रेसी' नामक संस्था द्वारा चुनाव प्रक्रिया में सुधार के लिए 1974 में जस्टिस वी.एम. तारकुण्डे की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी थी। इस गैर-सरकारी समिति ने 1975 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव दिए थे-

1. मतदान के लिए न्यूनतम आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी जाए।

2. राजनीतिक दलों के लिए आय-व्यय का लेखा रखना अनिवार्य कर दिया जाए और इसकी जाँच चुनाव आयोग द्वारा की जाए।

3. प्रत्येक उम्मीदवार को सरकार की ओर से छपे हुए मतदान कार्ड निःशुल्क दिए जाएँ और डाक से प्रचार-सामग्री निःशुल्क भेजने की व्यवस्था की जाए।

4. राजनीतिक दलों को दान देने वाले व्यक्ति एवं संस्थाओं को आय कर में छूट दी जाए।

5. लोक सभा या किसी विधान सभा के विघटन और नए चुनावों की घोषणा के बाद सरकारें काम चलाऊ सरकार की तरह कार्य करें और कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय न लें।

6. चुनाव के प्रचार के समय मंत्री सरकारी वाहनों का प्रयोग न करें। मंत्रियों द्वारा सरकारी धन एवं तन्त्र का भी प्रयोग न किया जाए।

7. लोक सभा के चुनाव हेतु नामांकन शुल्क 2,000 रुपए और विधान सभाओं के चुनाव के लिए नामांकन शुल्क 1,000 रुपए कर दिया जाए।

संथानम समिति- के. संथानम की अध्यक्षता में गठित संथानम समिति ने चुनाव प्रणाली में सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए-

1. चुनावों में भाग लेने वाले उम्मीदवारों की न्यूनतम शैक्षणिक योग्यताएँ निर्धारित की जाएँ।

2. राजनीतिक दलों के पंजीकरण, संविधान और इनके सदस्यों के पंजीकरण के लिए स्पष्ट नियम बनाए जाएँ।

3. निर्वाचन अधिकारियों को चुनाव आयोग के अधीन रखा जाए और दोषी निर्वाचन अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने का अधिकार चुनाव आयोग को दिया जाए।

4. मतदाता सूचियों को निरन्तर अद्यतन (Up-to-date) रखने की व्यवस्था की जाए।

5. समय-समय पर निर्वाचन क्षेत्रों (Constituencies) का परिसीमन किया जाए।

शेषन समिति-अप्रैल, 1992 में तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन ने चुनावी प्रणाली में सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए-

1. लाक सभा एवं राज्य विधान सभाओं के चुनावों के लिए नामांकन शुल्क क्रमशः 5,000 रुपए एवं 25,000 रुपए किया जाए।

2. लोक सभा के उम्मीदवारों हेतु 10 प्रस्तावकों एवं 10 समर्थकों और राज्य विधान सभाओं के उम्मीदवारों हेतु 10 समर्थकों का होना अनिवार्य किया जाए।

3. उम्मीदवारों के लिए एक से अधिक सीटों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

4. सभी मतदाताओं को पहचान-पत्र जारी किए जाएँ।

5. मतपेटियों के छीनने या अनाधिकार मतदान को संगीन अपराध घोषित किया जाए।

6. राजनीतिक दलों के आय-व्यय का लेखा परीक्षण (Audit) चुनाव आयोग द्वारा अधिकृत अभिकरण द्वारा कराया जाए।

7. आचार संहिता (Code of Conduct) का पालन न करने वाले उम्मीदवारों को पाँच वर्ष के लिए चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित किया जाए।

इन्द्रजीत समिति - 22 मई, 1998 को सम्पन्न सर्वदलीय सम्मेलन की सिफारिश पर जून, 1998 में भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी के वरिष्ठ सांसद इन्द्रजीत गुप्त की अध्यक्षता में एक संसदीय समिति गठित की गयी। इस समिति द्वारा अगस्त, 2000 में निम्नलिखित सुझाव दिए गए-

1. राजनीतिक दलों को चुनावों में खर्च करने हेतु धन-राशि सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जाए।

2. चुनाव खर्चा के लिए एक सार्वजनिक कोष स्थापित किया जाए, जिसमें सरकार द्वारा प्रति वर्ष 600 करोड़ रुपए की राशि का योगदान दिया जाए और इतनी ही राशि का योगदान राज्य सरकारों द्वारा किया जाए।

चुनाव सुधारों के लिए उठाए गए कदम (Measures Taken for Electoral Reforms)

भारतीय चुनाव प्रणाली में सुधार के लिए समय-समय पर सरकार द्वारा गठित समितियों एवं गैर-सरकारी समितियों द्वारा जो सुझाव दिए गए और चुनाव आयोग द्वारा जो दिशा-निर्देश जारी किए गए, उनको ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित कदम उठाए गए हैं-

1. मताधिकार की आयु में कमी (Lowering the Age of Franchise) - तारकुण्डे समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने 61वें संशोधन अधिनियम (1989) द्वारा मताधिकार की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दौ, ताकि लोगों की राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि हो सके।

2. इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों का प्रयोग (Use of EVM)- मतदान हेतु इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों के प्रयोग के लिए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन किया गया, जो 15 मार्च, 1998 से लागू हो गया। देश में 1998 में पहली बार राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं दिल्ली विधान सभाओं के कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग किया गया। इन चुनावों में हुए अनुभव को देखते हुए चुनाव आयोग ने जून, 1999 में गोवा विधान सभा के सभी निर्वाचन क्षेत्रों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों द्वारा मतदान कराया। इस प्रकार गोवा देश का पहला राज्य बन गया, जहाँ सबसे पहले चुनावों में इन मशीनों का प्रयोग किया गया। 2004 में 14वीं लोक सभा चुनावों में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों का प्रयोग किया गया। तब से इनका प्रयोग निरंतर किया जा रहा है।

3. मतदाताओं के लिए पहचान-पत्र (Identity Card for Voters)- चुनाव आयोग ने 28 अगस्त, 1993 को मतदाताओं को पहचान-पत्र जारी करने का निर्णय लिया और राज्य सरकारों से इस सम्बन्ध में कार्रवाई करने का आग्रह किया। लेकिन जब सभी मतदाताओं को समय पर पहचान-पत्र उपलब्ध नहीं कराए गए, तो मतदाताओं की पहचान के लिए वैकल्पिक दस्तावेजों- राशन कार्ड, बस पास, विद्यार्थी पहचान-पत्र आदि को मान्यता दी गयी।

4. बूथों पर कब्जे पर रोक (Prevention of Capturing of Booths)-1989 में चुनाव आयोग द्वारा यह निर्णय लिया गया कि बूथों पर कब्जा होने की स्थिति में चुनाव स्थगित या रद्द कर दिया जाएगा। आयोग ने स्पष्ट किया कि वृधों पर कब्जे में निम्नलिखित बातें शामिल होंगी-

(i) मतदान केन्द्र पर कब्जा कर लेना और मतदान अधिकारियों से मत-पत्र या इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन छीन लेना।

(ii) मतदान केन्द्रों को अपने कब्जे में ले लेना और सिर्फ अपने समर्थकों को मतदान करने की आज्ञा देना।

(i) किसी मतदाता को मतदान केन्द्र पर जाने को लेकर धमकाना एवं रोकना।

(iv) मतगणना केन्द्र पर कब्जा करना।

5. चुनाव प्रचार की अवधि में कमी (Reduction of Period of Election Campaign)- जनवरी 1992 जारी किए गए अध्यादेश और बाद में 1996 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 में संशोधन करके चुनाव प्रचार की अवधि 21 दिन से घटाकर 14 दिन कर दी गयो ताकि चुनाव में किए जाने वाले खर्च में कमी आए और भ्रष्टाचार पर रोक लग सका

6. दो से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध (Ban on Contesting Election from More than Two Constituencies) जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम 1996 के द्वारा एक साथ हो रहे आम चुनाव या उप-चुनाव में कोई उम्मीदवार लोक सभा या विधान सभा की दो से अधिक सीटों से चुनाव नहीं लड़ सकता है। ऐस ही प्रतिबन्ध राज्य सभा एवं राज्य विधान परिषदों के द्वि-वार्षिक चुनाव या उप-चुनाव में भी लागू होता है। साथ ही एक व्यक्ति एक साथ लोक सभा एवं किसी विधान सभा का चुनाव नहीं लड़ सकता है।

7. उम्मीदवार की मृत्यु पर चुनाव रदद नहीं (No Cancellation of Election on Account of Death of a Candidate) - जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996 में यह व्यवस्था की गयी है कि किसी स्वतन्त्र (निर्दलीय) उम्मीदवार को मृत्यु हो जाने पर चुनाव रद्द नहीं किया जाएगा। किसी मान्यता प्राप्त राष्ट्रीय दल एवं क्षेत्रीय दल के किर्म उम्मीदवार की मृत्यु होने की स्थिति में चुनाव आयोग द्वारा उस दल से सात दिन के अन्दर दूसरा उम्मीदवार खड़ा करने के लिए कहा जाएगा। इसके लिए चुनाव की तिथि बढ़ायी जा सकती है, लेकिन चुनाव रद्द नहीं किया जाएगा।

8. उप-चुनाव हेतु समय-सीमा (Limit of Time for By election)- जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996 द्वारा

यह भी व्यवस्था की गयी है कि किसी सांसद या विधायक के आकस्मिक निधन होने की स्थिति में रिक्त हुई सीट पर छः महीने के अन्दर उप-चुनाव कराना अनिवार्य होगा। लेकिन यदि रिक्त हुई सीट की अवधि एक वर्ष से कम रह गयी है, तो ऐसी स्थिति में यह शर्त लागू नहीं होगी।

9. चुनावी हिंसा पर नियन्त्रण (Control over Election Violence)- जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996 के द्वारा, चुनाव के दौरान हिंसक उपद्रव करना संगीन अपराध माना जाएगा। चुनावी हिंसा में लिप्त व्यक्ति को अपराधी घोषित किए जाने पर, छः माह का कारावास, एवं 2,000 रुपए तक का दण्ड दिया जा सकता है।

10. मतदान से 48 घंटे पूर्व चुनाव प्रचार पर प्रतिबंध (Ban on Election Campaign before Polling)-उस प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996 के द्वारा यह भी व्यवस्था की गयी है कि चुनाव प्रचार, जिसमें सिनेमा, दूरदर्शन, सभा करना आदि सम्मिलित है; मतदान के दिन से 48 घण्टे पहले रोक दिया जाएगा और इस नियम का उल्लंघन करने वाले उम्मीदवार के विरुद्ध कार्रवाई की जाएगी।

11. चुनाव खर्च के ब्योरे की प्रस्तुति (Submission of Details of Election Expenditure)- जनवरी 2002 में चुनाव आयोग ने सभी राजनीतिक दलों को यह निर्देश दिया कि उनके उम्मीदवार चुनाव खर्च का ब्यौरा सुरुव समाप्त होने के 45 दिनों के भीतर चुनाव कार्यालय में प्रस्तुत करें। चुनाव खर्च का ब्यौरा प्रस्तुत न करने की स्थिति में चुनाव आयोग राजनीतिक दलों के चुनाव चिह्न एवं मान्यता के निलम्बन जैसी दण्डात्मक कार्रवाई कर सकता है।

12. प्रस्तावकों की व्यवस्था (Provision for Proposers) - जन प्रतिनिधित्व (संशोधन) अधिनियम, 1996 में यह व्यवस्था की गयी है कि यदि लोक सभा या विधान सभा का चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार किसी मान्यता प्राप्त राजनीतिक दल का उम्मीदवार नहीं है, तो प्रस्तावक के रूप में उसके नामांकन पत्र पर निर्वाचन क्षेत्र में रहने वाले 10 पंजीकृत मतदाताओं के हस्ताक्षर होना अनिवार्य है। किन्तु यदि उम्मीदवार किसी मान्यता प्राप्त दल का उम्मीदवार है, तो उसके नामांकन-पत्र पर एक प्रस्तावक के हस्ताक्षर होना ही पर्याप्त होगा। ऐसा इसलिए किया गया है, ताकि गैर-गम्भीर व्यक्तियों को चुनाव में खड़ा होने से रोका जा सके।

13. राज्य सभा के चुनावों में परिवर्तन (Change in the Elections to Rajya Sabha) - सरकार द्वारा 2003 में राज्य सभा के चुनाव में दो उल्लेखनीय परिवर्तन किए गए। प्रथम, चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के लिए निवास (Domicile) की शर्त हटा दी गयी। इससे पहले उम्मीदवार, जिस राज्य से राज्य सभा के लिए चुनाव लड़ता था, उसके लिए उस राज्य का मतदाता होना जरूरी था। अब कोई व्यक्ति किसी भी राज्य से राज्य सभा का चुनाव लड़ सकता है। दितीय राज्य सभा के चुनावों में क्रास वोटिंग को रोकने को दृष्टि से खुले मतदान (Open Ballot) की व्यवस्था की गयी है। अब मतदान करने वाले राजनीतिक दल के निर्वाचकों को मत-पत्र पर मोहर लगाने के बाद अपने दल के मनोनीत पोलिंग एजेण्ट को मतपत्र दिखाना जरूरी है।

14. राजनीतिक दलों को चन्दा देने के बारे में नियम (Rule regarding Donation to Political Parties)-राजनीतिक दलों द्वारा चन्दा लिए जाने की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने की दृष्टि से चुनाव एवं अन्य मामले से सम्बन्धित (संशोधन) अधिनियम, 2003 लाया गया। इस अधिनियम के अनुसार राजनीतिक दलों को किसी निजी कम्पनी से मिली 20,000 रुपए या इससे अधिक राशि के चन्दे की रिपोर्ट चुनाव आयोग को देनी होगी। रिपोर्ट न देने वाले राजनीतिक दलों को ऐसी धन-राशि पर आयकर छूट की मनाही होगी।

15. आपराधिक तत्वों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध (Prohibition on Contesting Election by Criminal Elements) -27 मार्च, 2003 को चुनाव आयोग ने आपराधिक तत्त्वों के चुनाव लड़ने पर प्रतिबन्ध लगाने के उद्देश्य से यह आदेश जारी किया कि उम्मीदवारों को नामांकन पत्र दाखिल करते समय शपथ-पत्र पर निम्नलिखित जानकारी देनी होगी-

1. क्या उम्मीदवार को पहले किसी आपराधिक मामलें में सजा मिली है या निर्दोष करार दिया गया है या रिहा किया गया है? क्या उसे कैद की सजा या जुर्माना हुआ है?

2. क्या नामांकन पत्र दाखिल करने के छः महीने पहले, उम्मीदवार किसी ऐसे लम्बित मामले में अभियुक्त है, जिसमें दो साल या इससे अधिक अवधि की कैद की सजा हो सकती है?

3. उम्मीदवार, उसकी पत्नी/पति एवं आश्रितों की सम्पत्ति (चल, अचल सम्पत्ति, बैंकों में जमा राशि आदि) का विवरण।

4. देनदारी, यदि कोई हो, विशेष रूप से उम्मीदवार पर किसी सरकारी वित्तीय संस्थान या सरकार का बकाया।

5. उम्मीदवार की शैक्षणिक योग्यता।

उल्लेखनीय है कि शपथ-पत्र में झूठी या गलत जानकारी देना चुनावी अपराध होता है, जिसके लिए छः महीने की कैद की सजा या जुर्माना या दोनों हो सकता है।

16. चुनाव खर्च की सीमा में वृद्धि (Increase in the Limit of Election Expenditure)- सरकार द्वारा अक्टूबर, 2003 में जारी अधिसूचना के द्वारा लोक सभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए चुनाव खर्च की सीमा को 15 लाख रुपए से बढ़ाकर 25 लाख रुपए कर दिया गया था। विधान सभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के विषय में यह सीमा 10 लाख रुपए तय की गयी थी। इसे समय समय पर बढ़ाया जाता रहा है। 16वीं लोक सभा के चुनावों के समय लोक सभा के उम्मीदवारों के लिए चुनाव खर्च की सीमा 40 लाख रुपए से बढ़ाकर 70 लाख रुपए कर दी गयी और जनवरी, 2022 में इसे बढ़ाकर 95 लाख कर दिया गया।

17. जमानत की राशि में निरन्तर वृद्धि (Continuous Increase in the Security Amount)- ऐसे व्यक्ति, जो सिर्फ अपना नाम बनाने के लिए ही कोई चुनाव लड़ते हैं, को चुनाव लड़ने से रोकने के उद्देश्य से जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में अलग-अलग वर्गों के उम्मीदवारों के लिए नामांकन पत्र के साथ जमानत राशि जमा करने की व्यवस्था की गयी। 1996 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम को संशोधित करके यह व्यवस्था की गयी कि सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों को लोक सभा के चुनाव के लिए 10,000 रुपए और विधान सभा के चुनाव के लिए 5,000 रुपए जमा कराने होंगे, किन्तु अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को जमानत राशि के रूप में लोक सभा के चुनाव के लिए 5,000 रुपए और विधान सभा के चुनाव के लिए 2,500 रुपए जमा कराने होंगे।

आगे चलकर 2009 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन करके जमानत राशि में वृद्धि कर दी गयी। अब लोक सभा के लिए सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों को 25,000 रुपए और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को 12,000 रुपए जमानत राशि के रूप में जमा कराने होते हैं। इसी तरह, विधान सभा के लिए सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों को 10,000 रुपए और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को 5,000 रुपए जमानत राशि के रूप में प्रस्तुत करने होते हैं।'

18. एक्जिट पोल पर प्रतिबन्ध (Ban on Exit Poll) - चुनावों में सुधार लाने की दृष्टि से जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में 2009 में संशोधन करके यह व्यवस्था की गयी कि लोक सभा/राज्य विधान सभाओं के चुनावों के दौरान एक्जिट पोल और उनके परिणाम प्रकाशित नहीं किए जा सकेंगे। इस प्रावधान का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति दो साल तक की कैद या जुर्माना या फिर दोनों के भागीदार होंगे। ऐसा इसलिए किया गया, क्योंकि कुछ निजी चैनल अपनी पसन्द के राजनीतिक दलों के पक्ष में एक्जिट पोल के परिणाम प्रकाशित करके मतदाताओं को प्रभावित करने का कार्य करने लगे थे। यह व्यवस्था 1 फरवरी, 2010 से लागू है।

19. जिला स्तर पर अपीलीय अधिकारी (Appellate Authority at District Level) - जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में 2009 में संशोधन करके चुनाव कार्य में लगे किसी अधिकारी के किसी आदेश के विरुद्ध सुनवाई के लिए प्रत्येक जिले में एक अपीलीय अधिकारी की व्यवस्था की गयी है। पहले ऐसी शिकायतों की सुनवाई राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी किया करते थे। अब पहले शिकायतों की सुनवाई जिला-स्तरीय अपीलीय अधिकारी करेगा और फिर इसके निर्णयों के विरुद्ध अपील राज्य के मुख्य चुनाव अधिकारी के पास की जाएगी।'

दल-बदल की समस्या (Problem of Defection)

दल-बदल का अर्थ (Meaning of Defection) - डॉ. सुभाष कश्यप के मतानुसार "जब कोई विधायक वैयक्तिक मतभेदों के कारण अपने दल से त्याग-पत्र दे देता है और किसी दूसरे दल में शामिल हो जाता है अथवा नए दल का गठन कर लेता है अथवा अपने दल की सदस्यता छोड़े बिना इसके विरुद्ध सदन में मतदान करता है, तो यह राजनीतिक दल-बदल कहलाता है।" स्पष्ट है कि दल-बदल के दायरे में सांसद या विधायक ही आते हैं; किसी दल के साधारण सदस्य या पदाधिकारी नहीं। इस प्रकार दल-बदल का अर्थ सांसदों या विधायकों द्वारा राजनीतिक निष्ठा में परिवर्तन करना होता है। दल-बदल में प्रमुख रूप से निम्नलिखित बातें शामिल होती हैं-

1. किसी सांसद अथवा विधायक का किसी राजनीतिक दल के टिकट पर निर्वाचित होने के बाद उस दल को छोड़कर किसी दूसरे दल में शामिल हो जाना।

2. सांसद अथवा विधायक द्वारा किसी राजनीतिक दल को छोड़कर निर्दलीय बन जाना।

3. किसी सांसद अथवा विधायक द्वारा निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव जीतना, किन्तु बाद में किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाना।

4. किसी सांसद अथवा विधायक द्वारा अपने दल के निर्देशों के विपरीत सदन में मतदान करना।

भारत में दल-बदल के कारण (Reasons of Defection in India)

भारत में दल-बदल के अनेक कारण रहे हैं। इनमें प्रमुख कारण निम्नलिखित है-

आरंभिक कारण –

1. कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व की समाप्ति (End of Dominance of Congress Party) - कतिपय कारणों से भारतीय राजनीति में चौथे आम चुनावों (1967) तक कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व बना हुआ था किन्तु 1967 के आम चुनावों के बाद कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व समाप्त होने लगा था। क्योंकि अब सरदार पटेल मौलाना आजाद एवं पण्डित नेहरू जैसे नेता कांग्रेस में नहीं रह गए थे। इसके परिणामस्वरूप अनेक राज्यों में छोटे-छोटे विरोधी दल सरकार बनाने के अवसरों की तलाश करने लगे। इससे भारत में दल-बदल को बढ़ावा मिला। तब से आज तक यह सिलसिला जारी है।

2. कांग्रेस पार्टी में अनुशासनहीनता एवं गुटबाजी (Indiscipline and Groupism in Congress Party)-नेहरू जी की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी में गुटबाजी बढ़ने लगी थी। जब कांग्रेस पार्टी का नेतृत्व इंदिरा गाँधी के हाथों में आ गया था तो उनके कार्य करने के तौर-तरीके से पार्टी में गुटबाजी प्रारम्भ हो गयी थी जो 1969 में राष्ट्रपति के चुनाव के समय खुलकर सामने आ गयी थी और पार्टी का विभाजन हो गया था। जब आपातकाल की समाप्ति के बाद मार्च 1977 में देश में आम चुनाव हुए तो इनमें कांग्रेस पार्टी को हार का मुँह देखना पड़ा. जिसका पार्टी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और 1978 में कांग्रेस पार्टी का फिर से विभाजन हुआ। 1991 में राजीव गाँधी की मृत्यु के बाद कांग्रेस पार्टी एक प्रकार से नेतृत्वहीन हो गयी थी, जिसके कारण अनेक नेता पाटों छोड़कर सत्ता की तलाश में दूसरी पार्टियों में चले गए थे। कुछ समय बाद जब कांग्रेस पार्टी की स्थिति सुदृढ़ हुई तो ये नेता कांग्रेस पार्टी में वापस आ गए। इससे दल-बदल को बहुत बढ़ावा मिला।

अन्य कारण

3. निर्दलीय सदस्यों की भूमिका (Role of Independent Members) —भारत में कई बार केन्द्र एवं राज्यों में ऐसी स्थिति पैदा हुई जब निर्दलीय सदस्यों के सहयोग से सरकार बनीं और इन्हीं के कारण सरकारें गिरी। उत्तर प्रदेश में 1967 में गठित पहली गैर-कांग्रेसी सरकार में 50 से अधिक निर्दलीय विधायक शामिल थे। एक प्रकार से इस सरकार के बनाने एवं गिराने में निर्दलीय सदस्यों की निर्णायक भूमिका रही थी। निर्दलीय सदस्यों को मंत्री बनाने अथवा दूसरे प्रकार के प्रलोभन देकर राजनीतिक निष्ठा का व्यापार करने के लिए मजबूर किया गया था और इसमें ऊँची-से-ऊँची बोलियाँ लगायी गयी थीं। अन्य राज्यों में भी निर्दलीय विधायकों ने दल-बदल की परम्परा को कायम रखा है।

4. जनता की उदासीनता (Apathy of People) — भारतीय राजनीति की अनेक बुराइयों के लिए राजनीतिक संस्कृति भी जिम्मेदार है जिसमें जनता राजनीति में धर्म जाति क्षेत्र एवं अन्य संकीर्ण आधारों पर प्रतिक्रिया करती है। कभी-जनता दल-बदल को सजा देने के बजाय शरण देती है और उन्हें दोबारा चुनकर संसद तथा विधानसभा में भेजती है। ऐसी स्थिति में दल-बदल को फलने-फूलने का अवसर मिलता है।

5. अवसरवादिता (Opportunism)— भारतीय राजनीति में अवसरवादिता भी दल-बदल के लिए जिम्मेदार है। राजनीति में सिद्धांत लगभग समाप्त हो गए हैं, जिससे अवसर मिलते ही सत्ता प्राप्त करने की प्रवृत्ति का जन्म हुआ। सत्ता-प्राप्ति के लिए विधायक एवं सांसद जल्दी-जल्दी दल बदलते रहते हैं। राज्यों की राजनीति इसके की उदाहरण है, मई, 1982 में हरियाणा में छह निर्दलीय विधायकों को कांग्रेस पार्टी में शामिल करके मंत्री बनाया गया था।

6. राज्यपालों की भूमिका (Role of Governors)- राज्यपाल राज्य का संवैधानिक मुखिया होता है, जो विधान सभा के चुनावों के बाद राज्य में नई सरकार को नियुक्ति करता है। जब-जब राज्यों में अनिश्चितता की स्थिति बनी अधिकांश राज्यपालों ने अपने इस दायित्व का ठीक से निर्वाह नहीं किया। अनेक राज्यपालों ने राजनीतिज्ञों के दवाव एवं प्रभाव में आकर विधायकों को दल-बदल के अवसर प्रदान किए, ताकि कोई विशिष्ठ व्यक्ति या विशिष्ठ राजनीतिक दल सरकार बना सकें।

7. चुनावों के लिए टिकट न मिलना (Getting No Ticket for Elections) - भारतीय राजनीतिज्ञों का व्यवहार कुछ इस प्रकार का हो गया है कि वे सत्ता के बिना नहीं रह सकते। अगर किसी राजनीतिज्ञ को चुनाव लड़ने के लिए अपनी पार्टी से चुनाव टिकट नहीं मिलता तो वह तुरन्त अपनी पार्टी छोड़कर उस पार्टी में चला जाता है, जो उसको टिकट देने का वादा करती है या जहाँ उसे टिकट मिलने की सम्भावना होती है। नेताओं के इस प्रकार के व्यवहार से भी राजनीति में दल-बदल को बढ़ावा मिला है।

8. सैद्धान्तिक मतभेद (Difference on Principles)- वैसे तो अधिकतर मामलों में सत्ता प्राप्त करने के लिए या किसी अन्य प्रकार के लालचवश ही दल-बदल होता है, किन्तु अनेक बार सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण भी दल-बदल हो जाता है। आचार्य जे. बी. कृपलानी ने कांग्रेस पार्टी से सैद्धान्तिक मतभेद के आधार पर त्याग पत्र दिया था। इसी प्रकार से बाबू जगजीवन राम ने कांग्रेस पार्टी से इस्तीफा दिया था।

9. वरिष्ठ सदस्यों की उपेक्षा (Neglect of Senior Leaders)- कांग्रेस पार्टी में इंदिरा गाँधी के नेतृत्व में कई वरिष्ठ सदस्यों की उपेक्षा हुई थी, जिसके कारण उन्होंने कांग्रेस पार्टी छोड़ दी थी। कई बार ऐसा भी हुआ कि किसी वरिष्ठ सदस्य को मंत्रिमण्डल में शामिल नहीं किया गया तो उसने या तो वह दल छोड़ दिया या अन्य दल का गठन कर लिया। जनता पार्टी से अलग होकर अनेक नेताओं ने अलग-अलग पार्टियों का गठन किया। इसी प्रकार जनता दल में विभाजन होने पर इसके अनेक वरिष्ठ नेता अन्य दलों में शामिल हो गए। राम विलास पासवान ने जनता दल से अलग होकर लोक जनशक्ति पार्टी नामक दल बनाया था।

10. क्षेत्रीय दलों का उदय (Rise of Regional Parties)- देश में क्षेत्रीय दलों के उदय के कारण भी दल-बदत की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। जब किसी प्रभावशाली क्षेत्रीय नेता को केन्द्र में उसकी मर्जी के अनुरूप स्थान नहीं मिला प अपेक्षा के अनुसार दल में पद एवं सम्मान नहीं मिला तो उसने वह दल छोडकर क्षेत्रीय दल का गठन कर लिया। उदाहरण के लिए हरियाणा में बंसी लाल ने कांग्रेस पार्टी छोड़कर हरियाणा विकास पार्टी का गठन किया था, तो भजन लाल ने हरियाणा जन हित कांग्रेस का।

11. धन का लालच (Temptation of Money)- भले ही स्वीकार न करें लेकिन भारत में धन के लालब में भी सांसदों या विधायकों ने दल-बदल किया है। 2010 में हुए राज्य सभा की कुछ सीटों के चुनावों में क्रॉस वोटिंग के लिए लगभग 50-50 लाख रुपए दिए जाने के समाचार मिले थे। इससे पहले 22 जुलाई 2008 को भारतीय जनता पार्टी के सांसदों ने लोक सभा में उन्हें कथित रूप से रिश्वत में दिए गए नोटों के बण्डल हवा में लहराए थे।

दल-बदल का भारतीय राजनीति पर प्रभाव (Impact of Defection on Indian Politics)

दल-बदल के प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं—

1. छोटे-छोटे दलों का उदय (Rise of Small Political Parties) - स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एकमात्र प्रमुख पार्टी बनकर उभरी थी। साम्यवादी दल, समाजवादी दल एवं भारतीय जन संघ आदि अन्य दल डे थे, किन्तु राजनीति में इनकी भूमिका नगण्य ही थी। 1967 के बाद जैसे-जैसे दल-बदल होने लगा, अनेक छोटे-छोटे दल अस्तित्व में आने लगे। इन दलों का गठन संकीर्ण आधारों क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद आदि पर हुआ। जैसे ही कोई राजनीतिज्ञ किसी कारण किसी प्रमुख राजनीतिक दल से अलग हुआ, उसने अपना अलग राजनीतिक दल बना डाला। इसी कारण ही भारतीय क्रान्ति दल, एवं हरियाणा विशाल पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल (यू) जनता दल (एस.) बीजू जनता दल, समाजवादी पार्टी, तृण मूल कांग्रेस, नामक दल अस्तिव में आए।

2. राजनीतिक अस्थिरता (Political unstability)- दल-बदल के कारण देश में राजनीतिक अस्थिरता का जन्म हुआ है, क्योंकि इसके कारण एक सरकार गिरती है, तो दूसरी सरकार का गठन हो जाता है। चौथे आम चुनावों के बाद देश में व्यापक पैमाने पर दल-बदल हुआ था, जिसके कारण एक-एक करके पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल में सरकारों का पतन हुआ था और यहाँ राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा था। इसी प्रकार दल-बदल के कारण जुलाई, 1979 में प्रधान मंत्री मोरारजी देसाई की सरकार का पतन हुआ था।

3. राजनीति का अपराधीकरण (Criminalisation of Politics)- भारत में दल-बदल के कारण राजनीति का अपराधीकरण हुआ है, क्योंकि जब एक दल किसी अपराधी सदस्य को दल से बाहर करता है, तो दूसरा दल हाथ बढ़ाकर उसका स्वागत करता है। आज कोई भी ऐसा राजनीतिक दल नहीं है, जिसमें कि अपराधिक छवि वाले व्यक्ति शामिल न हो।

4. राजनीति में धन की बढ़ती भूमिका (Increasing Role of Money in Politics)-जब दल-बदल के लिए विधायकों एवं सांसदों की खरीद-फरोख्त की जाने लगी, तो इसके लिए धन की जरूरत पड़ी, जिससे राजनीति में धन की भूमिका बढ़ी। धन की भूमिका न केवल राज्यों अथवा केन्द्र की राजनीति में, बल्कि स्थानीय राजनीति में भी बढ़ी है, इसीलिए राजनीति में धनी वर्ग कूद पड़ा है।

5. राजनीतिक मूल्यों में गिरावट (Decline of Political Values)- दल-बदल की प्रवृत्ति बढ़ने से राजनीतिक मूल्यों में भारी गिरावट आयी है, जिससे एक नवीन राजनीतिक संस्कृति का उदय हुआ है। भारत में जन-प्रतिनिधियों की निष्ठाएँ एवं प्राथमिकताएँ बदली हैं और अवसरवाद राजनीतिक व्यवहार का हिस्सा बनकर उभरा है।

6. कल्याणकारी नीतियों पर नकारात्मक प्रभाव (Negative Impact on Welfare Policies)- भारत में राज्य ने कल्याणकारी राज्य का रूप धारण कर लिया है, किन्तु राजनीतिक प्रबंधन की कीमत इतनी अधिक बढ़ गयी है कि देश का अधिकांश धन राजनीति में चला जाता है। इसका कल्याणकारी नीतियों पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार देश में दल-बदल की समस्या राजनीतिक समस्या के साथ-साथ एक सामाजिक-आर्थिक समस्या भी बनकर उभरी है।

7. लोकतांत्रिक संस्थाओं का पतन (Decline of Democratic Institutions)- भारत में दल-बदल के कारण राजनीति में अपराधिक पृष्ठभूमि के लोगों का प्रवेश हुआ है, जिससे लोकतांत्रिक संस्थाओं, अर्थात् विधानपालिका एवं कार्यपालिका में अपराधी तत्व प्रवेश कर गए हैं। इससे इन संस्थाओं की गरिमा में भारी गिरावट आयी है। अपराधी प्रवृत्ति के सांसद एवं विधायक संसदीय प्रक्रिया में बाधा डालते हैं, जिसके कारण संसद अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाती है। कार्यपालिका के

कार्यों एवं कार्य-शैली पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ा है।

9. मंत्रि-परिषदों का अनावश्यक विस्तार (Un-necessary Expansion of Council of Ministers)-91वाँ संशोधन अधिनियम (2003) लागू होने से पहले मंत्रि-परिषदों के आकार के बारे में कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ऐसे में प्रायः मुख्य मंत्री अपनी सरकार बचाने के लिए अधिक-से-अधिक दल-बदलुओं को मंत्रि-परिषद में शामिल किया करते थे। इस अधिनियम के लागू हो जाने के बाद दल-बदलुओं को कभी मन्त्री का, तो कभी संसदीय सचिव का दर्जा दे दिया जाता है। इससे राजकोष पर भार बढ़ता है और सरकार के विकासकारी कार्यक्रमों को हानि होती है।

10. लोकतांत्रिक आस्था पर प्रहार (Attack on Democratic Faith) - लोकतन्त्र में नागरिकों की जन प्रतिनिधियों-सांसद एवं विधायकों में आस्था रहनी चाहिए, क्योंकि ये लोग कानून-निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। लेकिन जब कोई जन प्रतिनिधि दल-बदल कर लेता है, तो उसमें मतदाताओं की आस्था कम हो जाती है। इससे धीरे-धीरे ऐसे मूल्यों का सृजन होता है, जो लोकतन्त्र विरोधी होते हैं।

दल-बदल को रोकने के संवैधानिक उपाय

दल-बदल को रोकने के लिए संविधान में संशोधन किये गए हैं, जो कि इस प्रकार हैं —

52वाँ संशोधन अधिनियम (52nd Amendment Act) 1985 -आठवीं लोक सभा के चुनावों (1985) के समय प्रधान मंत्री राजीव गाँधी ने दल-बदल को रोकने के लिए एक कारगर संशोधन विधेयक लाने का वादा किया था। इस वादे को पूरा करने के उद्देश्य से संविधान में 52वाँ संशोधन किया गया, जिसकी मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं-

1. यदि संसद या राज्य विधान सभा का कोई सदस्य, जो किसी राजनीतिक दल के टिकट पर चुनाव जीत कर आता है, उस दल से त्याग-पत्र दे देता है अथवा उसे उस दल से निष्कासित कर दिया जाता है अथवा वह उस दल के निर्देशों के विरुद्ध सदन में मतदान करता है अथवा दल के निर्देशों के बावजूद मतदान के समय सदन में उपस्थित नहीं रहता है, तो उसे सदन की सदस्यता छोड़नी पड़ेगी।

2. अगर कोई मनोनीत सदस्य, सदस्य बनने के समय छः महीने बाद किसी राजनीतिक दल का सदस्य बन जाता है, तो इसे दल -बदल माना जाएगा और उसे सदन की सदस्यता छोड़नी पड़ेगी।

3. अगर निर्दलीय सदस्य के रूप में चुनाव जीतकर आने वाला सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल हो जाएगा. तो उसकी सदस्यता समाप्त हो जाएगी।

4. यदि किसी विधायक दल के कम-से-कम एक-तिहाई सांसद/विधायक अपना दल छोड़कर नए विधायक दल का गठन कर लेते हैं, तो यह दल-बदल नहीं, बल्कि मूल दल का विघटन (Split) माना जाएगा।

5. यदि किसी विधायक दल के कम-से-कम दो-तिहाई सांसद/विधायक अपना दल छोड़कर किसी दूसरे दल में शामिल हो जाते हैं. तो यह दल-बदल नहीं, बल्कि मूल दल का दूसरे दल में विलय (Merger) माना जाएगा।

6. सदन की सदस्यता के सम्बन्ध में सदन के पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम माना जाएगा। इसी प्रकार दल के विभाजन एवं विलय के सम्बन्ध में भी अंतिम निर्णय पीठासीन अधिकारी का ही होगा।

इस दल-बदल विरोधी कानून (52वें संशोधन अधिनियम) का प्रारम्भ में अच्छा परिणाम सामने आया। इससे एक बार दल-बदल रुका और राजनीतिक दलों में अनुशासन बढ़ा, किन्तु धीरे-धीरे सांसद एवं विधायक दोनों इस अधिनियम की कमजोरियों का लाभ उठाने लगे और दल के 'विघटन' या 'विलय' के नाम पर दल-बदल करने लगे।

52वें संशोधन अधिनियम को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती (Challenge to 52nd Amendment in Supreme

Court)-11 फरवरी, 1991 को लोक सभा अध्यक्ष रवि राय ने दल-बदल विरोधी अधिनियम के अन्तर्गत पाँच मंत्रियों सहित जनता दल के आठ सदस्यों को लोक सभा की सदस्यता से अयोग्य घोषित कर दिया। इसी तरह मेघालय विधान सभा के अध्यक्ष ने 17 अगस्त, 1991 को पाँच निर्दलीय सदस्यों को विधान सभा की सदस्यता के अयोग्य घोषित कर दिया। ऐसे में 52वें संशोधन अधिनियम की संवैधानिकता को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी। सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक खण्डपीठ ने 12 नवम्बर, 1991 को ऐतिहासिक निर्णय देते हुए कहा कि दल-बदल विरोधी अधिनियम वैध है, किन्तु इसी के साथ यह भी स्पष्ट किया कि राज्य विधानमण्डल के सदस्यों या संसद सदस्यों की योग्यता के विषय में पीठासीन अधिकारियों का निर्णय अंतिम नहीं होगा, क्योंकि इनके निर्णय पर सर्वोच्च न्यायालय या उच्च्च न्यायालय विचार कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की 10वीं अनुसूची के उस सातवें पैरे को भी रद्द कर दिया, जिसमें यह व्यवस्था की गयी थी कि पीठासीन अधिकारियों के निर्णय पर उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय विचार नहीं कर सकता।

91वाँ संशोधन अधिनियम, (91st Amendment, Act) 2003- दल-बदल पर पूर्ण रोक लगाने और मंत्रि-परिषद का आकार सीमित करने के उद्देश्य से 91वाँ संशोधन अधिनियम, (2003) लाया गया। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है-

1. दल-बदल करने वाले सांसदों या विधायकों की सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जाएगी, भले ही इनकी संख्या कितनी भी क्यों न हो।

2. दल-बदल करने वाला सदस्य किसी भी प्रकार का सरकारी एवं लाभ का पद प्राप्त नहीं कर सकेगा।

3. सदन की सदस्यता प्राप्त करने के लिए दल-बदल करने वाले व्यक्ति को पुनः चुनाव जीतना होगा।

4. मंत्रि-परिषद का आकार निम्न सदन की सदस्य संख्या का 15 प्रतिशत ही हो सकेगा, किन्तु छोटे राज्यों में मंत्रियों की न्यूनतम संख्या 12 रखी जा सकेगी।

5. जहाँ भी मंत्रि-परिषद् का आकार 15 प्रतिशत से ज्यादा है. वहाँ इस अधिनियम के लागू होने के छः माह के अन्दर आकार को 15 प्रतिशत तक करना होगा।

6. इस अधिनियम द्वारा 52वें संशोधन अधिनियम के एक-तिहाई वाले प्रावधान को हटा दिया गया है अर्थात् अब एक-तिहाई सदस्यों के विभाजन को मान्यता नहीं दी जा सकेगी, किन्तु विलय वाला प्रावधान रखा गया है।

91वें संशोधन अधिनियम (2003) के लागू होने के छः माह के अन्दर विभिन्न राज्यों में लगभग 250 मंत्री उनके पदों से हटाए गए। जब उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव ने मुख्य मंत्री पद की शपथ ली थी, तो उनके साथ 403 विधायकों में से 97 विधायकों ने मंत्री पद की शपथ ली थी। इसी प्रकार महाराष्ट्र में सुशील कुमार शिंदे ने भी 228 सदस्यों वाली विधान सभा में 69 मंत्रियों के साथ शपथ ली थी।

यद्यपि 91वें संशोधन अधिनियम (2003) के लागू होने के समय ऐसा प्रतीत होता था कि यह अधिनियम दल-बदल की प्रवृत्ति पर पूर्ण रूप से अंकुश लगा देगा, परंतु दल -बदल आज भी जारी है।

चुनाव आयोग एवं चुनाव प्रक्रिया

(Election Commission and Electroal Process)

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है। एक लोकतान्त्रिक देश में समयबद्ध चुनाव होने अनिवार्य हैं ताकि नागरिक अपने मताधिकार का प्रयोग करके अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते रहें। चुनाव कराने के लिए एक स्वतंत्र प निष्पक्ष निकाय का होना आवश्यक है। भारत में चुनाव कराने का कार्य निर्वाचन आयोग द्वारा किया जाता है। जिसकी व्यवस्था संविधान के

अनुच्छेद 324 में की गयी है। भारत में चुनाव आयोग की स्थापना 25 जनवरी 1950 को की गयी थी।

यहाँ इस आयोग की रचना (संगठन) शक्तियों, कार्यों एवं भूमिका का वर्णन प्रस्तुत है।

रचना (Composition)- संविधान के अनुच्छेद 324 में चुनाव आयोग की व्यवस्था की गयी है। किन्तु संविधान में चुनाव आयुक्तों की संख्या निश्चित नहीं की गयी है; बल्कि यह मामला राष्ट्रपति पर छोड़ दिया है। संविधान के **अनुच्छेद 324(2)** के अनुसार, "चुनाव आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त और ऐसे दूसरे आयुक्त होंगे, जिनको संख्या राष्ट्रपति समय-समय पर तय करेगा। यदि चुनाव आयोग में एक से अधिक आयुक्त होते हैं, तो मुख्य चुनाव आयुक्त आयोग का सभापति होता है। राष्ट्रपति को चुनाव आयोग की सहायता के लिए लोक सभा एवं राज्य विधानमण्डलों के चुनाव से पूर्व क्षेत्रीय चुनाव आयुक्त नियुक्त करने का अधिकार है। राष्ट्रपति संसद द्वारा निर्मित कानून के अनुसार चुनाव आयुक्त एवं क्षेत्रीय चुनाव आयुक्तों के कार्यकाल एवं सेवा-सम्बन्धी शर्ते निश्चित करता है।

इस समय चुनाव आयोग में एक मुख्य चुनाव आयुक्त एवं दो अन्य आयुक्त कार्यरत हैं।

नियुक्ति (Appointment)- चुनाव आयोग में मुख्य चुनाव आयुक्त एवं अन्य दो आयुक्तों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। प्रायः उच्च प्रशासनिक अधिकारियों को ही मुख्य चुनाव आयुक्त या चुनाव आयुक्तों के रूप में नियुक्त किया जाता है।

नियुक्ति प्रक्रिया — चुनाव आयुक्त की नियुक्ति **मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्त (नियुक्ति, सेवा की शर्तें और पदावधि) अधिनियम, 202**3 के तहत भारत के राष्ट्रपति द्वारा तीन सदस्यीय चयन समिति की सिफारिश पर की जाती है, जिसके अध्यक्ष भारत के प्रधानमंत्री होते हैं तथा जिसमें विपक्ष का नेता और एक केंद्रीय कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं।

वर्तमान में मुख्य चुनाव आयुक्त श्री ज्ञानेश कुमार जी हैं

कार्यकाल (Term)- चुनाव आयुक्तों का कार्यकाल 6 वर्ष या 65 साल की उम्र तक होता है।

चुनाव आयुक्तों की पदच्युति (Removal of Election Commissioners)- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324(5) में चुनाव आयुक्तों को पद से हटाने की व्यवस्था की गयी है। मुख्य चुनाव आयुक्त को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को पद से को हटाने की विधि के द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है । इसका अभिप्राय यह है कि मुख्य चुनाव आयुक्त को पद से तभी हटाया जा सकता है, जब संसद के दोनों सदन अलग-अलग विशेष बहुमत (उपस्थिति एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत और कुल सदस्यों के स्पष्ट बहुमत) से महाभियोग प्रस्ताव को पारित कर दें। अन्य चुनाव आयुक्तों या क्षेत्रीय चुनाव आयुक्तों को राष्ट्रपति मुख्य चुनाव आयुक्त की सलाह से उनके पद से हटा सकता है।

वेतन (Salary)- वर्तमान में चुनाव आयुक्तों का वेतन 2.5 लाख रुपए है।

चुनाव आयोग का कर्मचारी वर्ग (Staff of Election Commission) - अनुच्छेद 324 (6) के अन्तर्गत चुनाव आयोग चुनाव सम्पन्न कराने के लिए केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों से कर्मचारियों को माँग कर सकता है। ऐसे में दोनों सरकारें इसको कर्मचारी उपलब्ध कराती हैं। जिन कर्मचारियों को चुनाव कार्यों में लगाया जाता है, वे अपनी ड्यूटी के दौरान चुनाव आयोग के नियन्त्रण में कार्य करते हैं, क्योंकि इस दौरान इन्हें चुनाव आयोग के पास प्रति-नियुक्ति (Deputation) पर माना जाता है। ऐसे में कोई भी सरकार चुनाव आयोग की स्वीकृति के बिना इनका स्थानान्तरण नहीं कर सकती है।

चुनाव आयोग की शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions of Election Commission

भारतीय चुनाव आयोग निम्नलिखित कार्यों का निष्पादन करता है-

1. निर्वाचन क्षेत्रों का सीमांकन (Delimitation of Constituencies) -निरन्तर बढ़ती जनसंख्या एवं अन्य कई कारणों से

10-10 वर्षों के अन्तराल पर होने वाली जनगणना के पश्चात् भारत में निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन कराया जाता है। यह कार्य एक तीन सदस्यीय 'परिसीमन आयोग' (Delimitation Commission) द्वारा किया जाता है। इस आयोग का अध्यक्ष स्वय मुख्य चुनाव आयुक्त होता है और इसके शेष दो सदस्य सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश होते हैं। इस आयोग के निर्णयों को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

2. मतदाता सुचियों की तैयारी (Preparation of Electoral Rolls) भारत में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के सिद्धान्त को अपनाया गया है। यहाँ पहले मताधिकार को आयु सीमा 21 वर्ष थी. किन्तु आगे चलकर 61 वें संशोधन अधिनियम (1989) द्वारा इसे घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। आज प्रत्येक नागरिक को जिसकी आयु 18 वर्ष हो चुकी है. मताधिकार प्रार है। चुनाव आयोग निरंतर मतदाता सूचियों को अपडेट करता रहता है।

3. राजनीतिक दलों का पंजीकरण (Registration of Political Parties)— दिसम्बर 1988 में भारतीय संसद ने जनप्रतिनिधि अधिनियम 1951 में संशोधन करके यह व्यवस्था की कि प्रत्येक राजनीतिक दल का चुनाव आयोग द्वारा पंजीकरण किया जाना आवश्यक है। 1951 के जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में हुए संशोधन के अनुसार जो राजनीतिक दल पंजीकृत नहीं होगा उसे राजनीतिक दल के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जाएगी।

4. राजनीतिक दलों को मान्यता (Recognition of Political Parties)- भारत में बहु-दलीय प्रणाली मौजूद है। यहाँ अनेक राष्ट्रीय एवं राज्य-स्तर के राजनीतिक दल मौजूद हैं। यहाँ नए-नए राजनीतिक दल बनते-बिगड़ते रहते हैं। ऐसी स्थिति में चुनाव आयोग नए दलों को मान्यता देता है। यह राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय स्तर का दल घोषित करता है। चुनाव 16वीं लोक सभा के चुनावों (2014) के अवसर पर चुनाव आयोग ने छः राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय दल के रूप में और 56 राजनीतिक दलों को राज्य स्तरीय दलों के रूप में मान्यता दी।

5. चुनाव-चिह्नों का आवंटन (Allocation of Election Symbois)- भारत में मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के अतिरिक्त निर्दलीय उम्मीदवार भी चुनाव लड़ते हैं। ऐसी स्थिति में चुनाव आयोग मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों को स्थायी अथवा संरक्षित चुनाव चिह्न और निर्दलीय उम्मीदवारों को अस्थायी चुनाव चिह्न आवंटित करता है। चुनाव आयोग चुनाव चिह्नों के बारे में उत्पन्न विवादों एवं दावों को सुनता है और इनका निपटारा भी करता है।

6. चुनाव अधिसूचना की घोषणा (Declaration of Election Notification)- चुनाव आयोग का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है- चुनाव कराने के लिए चुनाव तिथियों की घोषणा करना। वह उम्मीदवारों के नामांकन पत्र भरने, नामांकन पत्रों की जाँच-पड़ताल करने, नामांकन पत्र वापस लेने, मतदान करने एवं मतगणना करने की तारीखें निश्चित करता है। चुनाव आयोग यह भी तय करता है कि कोई चुनाव कितने चरणों में कराया जाए, जिससे कि सभी नागरिक अपने मतदान का प्रयोग कर सकें। उदाहरण के लिए इसने 16वीं लोक सभा चुनावों को 7 अप्रैल से लेकर 12 मई तक नौ चरणों में विभाजित करने का निर्णय लिया था।

7. राजनीतिक दलों को निर्वाचन में ठीक आचरण रखने के निर्देश (Instruction to Political Parties for Good Conduct in Elections)- चुनाव आयोग चुनावों के समय राजनीतिक दलों को आचरण सम्बन्धी निर्देश जारी करता है; जैस -(i) कोई भी राजनीतिक दल जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा आदि के नाम पर मतदाताओं में संकीर्ण भावना पैदा नहीं करेगा।

(ii) एक राजनीतिक दल निश्चित सीमा के अन्दर रहकर ही दूसरे राजनीतिक दल की आलोचना कर सकता है।

(iii) चुनाव उपयोग चुनाव कराने के लिए राजनीतिक दलों एवं निर्दलीय उम्मीदवारों के लिए आचार संहिता लागू करता है। सभी राजनीतिक दल, उनके अधिकृत उम्मीदवार एवं निर्दलीय उम्मीदवार इन निर्देशों का पालन करते रहें, इसको सुनिश्चित करने के लिए चुनाव आयोग पर्यवेक्षकों (Observers) की नियुक्ति करता है।

8. चुनावों का निरीक्षण, निर्देशन एवं नियन्त्रण (Superintendence, Direction and Control of Elections)- संविधान के अनुच्छेद 324 द्वारा स्थानीय संस्थाओं के अलावा, सभी प्रकार के आम चुनावों, मध्यावधि चुनावों एवं उप-चुनावों

के निरीक्षण, निर्देशन एवं नियन्त्रण का कार्य चुनाव आयोग को सौंपा गया है। देश में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए चुनाव आयोग द्वारा चुनायों का निरीक्षण, निर्देशन एवं नियन्त्रण जरूरी है।

9. पुनः मतदान कराने का आदेश (Order for Re-poll)- भारत में लोक सभा के 18 चुनाव सम्पन्न हो चुके हैं। यद्यपि चुनाव आयोग द्वारा अनेक निर्वाचन क्षेत्र और उनके अन्दर आने वाले मतदान केन्द्र संवेदनशील या अति संवेदनशील घोषित कर दिए जाते हैं. जिनमें सावधानीपूर्वक चुनाव करवाया जाता है। इसके बावजूद भी. यहाँ चुनावों में उम्मीदवारों द्वारा अनुचित साधनों का प्रयोग किया जाता है। चुनाव आयोग जाँच-पड़ताल के बाद उन मतदान केन्द्रों पर हुए मतदान को रद्द करके पुनः मतदान कराने के आदेश देता है।

10. इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों की सुरक्षा एवं मतों की गणना (Safety of Electronic Voting Machines and Counting of Votes)- संसद अथवा राज्य विधानमण्डलों के चुनावों के लिए मतदान हो जाने के बाद चुनाव आयोग इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीनों की सुरक्षा की व्यवस्था करता है और निर्धारित तिथि को मतों की गणना करवाता है।

11. चुनावों को रद्द करना (Countermand of Elections)- किसी चुनाव की तिथियों की घोषणा हो जाने के पश्चात् चुनाव निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ही होता है, किन्तु विशेष परिस्थितियों में चुनाव आयोग चुनाव को स्थगित कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि मान्यता प्राप्त दल के किसी उम्मीदवार की मृत्यु हो जाती है, तो चुनाव आयोग उस निर्वाचन क्षेत्र के चुनाव रोककर चुनाव के लिए नई तिथियों की घोषणा कर सकता है।

12. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के चुनावों का संचालन (Conduct of Elections of President and Vice-President) - चुनाव आयोग राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के चुनावों की व्यवस्था करता है। इसके लिए यह नई दिल्ली में एक चुनाव अधिकारी एवं अलग-अलग राज्यों की राजधानियों में सहायक चुनाव अधिकारी नियुक्त करता है। चुनाव आयोग मतदाता सूचियाँ तैयार करवाता है और इन चुनावों के लिए तिथियों की घोषणा करता है अर्थात् यह नामांकन पत्र भरने, नामांकन पत्रों की जाँच-पड़ताल करने, नामांकन पत्र वापस लेने आदि की तिथियाँ निर्धारित करता है।

13. सलाहकारी कार्य (Advisory Functions)- चुनाव आयोग कुछ सलाहकारी कार्य भी करता है। यदि तोक सभा या राज्य सभा के किसी सदस्य की योग्यता सम्बन्धी विवाद उत्पन्न हो जाए, तो चुनाव आयोग इस विषय में राष्ट्रपति को सलाह देकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। इसी प्रकार राज्य विधानमंडल अर्थात् विधान सभा या विधान परिषद् के सदस्यों को योग्यता सम्बन्धी मामलों में चुनाव आयोग राज्यपाल को सलाह देता है।

मतदान व्यवहार

मतदान व्यवहार का अर्थ (Meaning of Voting Behaviour) - चुनाव के समय मतदाता जिस प्रकार से चुनाव प्रक्रिया के प्रति, चुनावी विषयों के प्रति और उम्मीदवारों के प्रति अपना रुख, रुझान एवं पसंद व्यक्त करते हैं, उसे राजनीति शास्त्र में मतदान व्यवहार की संज्ञा दी गयी है।

वे तत्त्व या कारक, जिनसे प्रभावित होकर मतदाता किसी उम्मीदवार या राजनीतिक दल के पक्ष में मतदान करते हैं, **मतदान व्यवहार के निर्धारक तत्त्व (Determinants)** कहलाते हैं।

मतदान व्यवहार के मुख्य निर्धारक (Main Determinants of Voting Behaviour)

पिछले 25-30 वर्षों में भारत में चुनाव प्रक्रिया एवं लोकतंत्र का स्वरूप बदला है। शिक्षा एवं प्रेस के विस्तार से मतदाताओं को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विषयों की जानकारी मिलती रहती है. जो मतदान के समय उनके निर्णय को प्रभावित

करती हैं। वर्तमान में भारतीय मतदाताओं के व्यवहार को मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्त्व प्रभावित करते हैं।

1. जाति (Caste) - जाति भारतीय समाज की एक ऐसी सच्चाई है, जिससे व्यक्ति सबसे अधिक प्रभावित होता है। शिक्षा के प्रसार के बाद भी मतदाताओं का अपनी जाति के प्रति लगाव कम नहीं हुआ है। राजनीतिक स्तर पर जाति का प्रभाव पहले से अधिक बढ़ा है। राज शास्त्र के विख्यात विद्वान प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी विख्यात पुस्तक 'राजनीति में जाति' में यह बताया है कि भारत में सामाजिक स्तर पर अवश्य ही जाति का प्रभाव घटा है, किन्तु राजनीतिक स्तर पर जाति के प्रभाव में वृद्धि हुई है। यही कारण है कि राजनीतिक दल किसी उम्मीदवार को अपना टिकट देते समय उसकी जाति और जिस निर्वाचन क्षेत्र से वह चुनाव लड़ना चाहता है,उस निर्वाचन क्षेत्र में रहने वाले मतदाताओं की जातियों पर विशेष रूप से ध्यान देते हैं। कुछ सीमा तक जब मतदाता अपने मत का प्रयोग करता है, तो वह जाति से प्रभावित होकर अपनी जाति के उम्मीदवार के पक्ष में मत डालता है।

2. विचारधारा (Ideology) - विचारधारा भी मतदान व्यवहार का एक निर्धारक तत्त्व होता है। भारत में कुछ एवं राजनीतिक दल हैं, जिनकी कोई-न-कोई विचारधारा अवश्य है। ये खुलकर इसका प्रचार एवं प्रसार करते हैं, जिससे मतदाता थोड़ा-बहुत अवश्य ही प्रभावित होते है। यहाँ समाजवाद, साम्यवाद, उदारवाद, गांधीवाद, लोहियावाद, हिन्दूवाद जैसी अनेक ऐसी विचारधाराएँ प्रचलित हैं, जिनके आधार पर राजनीतिक दल बने हैं। इन विचारधाराओं ने चुनावी राजनीति को प्रभावित किया और ये मतदान-निर्धारण का एक तत्त्व बन गयीं।

3. धन की भूमिका (Role of Money)- आज के भौतिकवादी युग में व्यक्ति के जीवन में धन की अहम भूमिका है। भारत में होने वाले सभी चुनावों में उम्मीदवारों द्वारा धन के द्वारा मतदाताओं को प्रभावित किया एवं लुभाया जाता है। कभी-कभी गरीब एवं बेरोजगार व्यक्ति धन के लालच में आकर अपना मत दे देते हैं। इस प्रकार धन मतदान व्यवहार का एक निर्धारक तत्त्व बन जाता है। यहाँ केवल गरीब एवं बेरोजगार व्यक्ति ही नहीं, बल्कि विधायक एवं सांसद भी मताधिकार के लिए बिकते देखे गए हैं। यहाँ एक दल से दूसरे दल में जाने और दलों के तोड़ने जोड़ने में धन की अहम भूमिका रहती है।

4. दलीय नेतृत्व (Party Leadership) - व्यक्ति पूजा (Personality Cult) भारतीय राजनीति की विशेषता रही है। यहाँ प्रायः राजनीतिक दल किसी ऐसे विशिष्ट नेता के चारों ओर घूमते हैं, जिसका अपना प्रभाव होता है। ऐसा नेता मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करता है। प्रथम तीन आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी की विजय का कारण पण्डित नेहरू का चमत्कारी व्यक्तित्व था। 16वीं एवं 17वीं लोक सभाओं के चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की सफलता का एक प्रमुख कारण नरेन्द्र मोदी का कुशल नेतृत्व रहा है।

5. धर्म (Religion)- जाति की तरह, धर्म भी भारतीय मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करने वाला प्रमुख तत्व है। भारत में मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, शिव सेना एवं अकाली दल जैसे राजनीतिक दलों का गठन ही धर्म के आधार पर हुआ है। ये दल धर्म के नाम पर वोट माँगते हैं। अयोध्या में राम लला के मन्दिर के निर्माण के मुद्दे ने हिन्दू मतदाताओं को प्रभावित करने और भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में मतदान करने में प्रमुख भूमिका निभायी है।

6. आयु (Age)- भारत में मतदाताओं के व्यवहार को आयु भी प्रभावित करती है। 18 से 30 वर्ष की आयु के मतदाताओं का व्यवहार 50 या 50 वर्ष से ऊपर के मतदाताओं के व्यवहार से नहीं मिलता है। किसी भावनात्मक मुद्दे से अधिक उम्र के मतदाताओं की अपेक्षा कम उम्र के मतदाता जल्दी प्रभावित होते हैं। प्रायः नौजवान उम्मीदवारों के प्रति मतदाताओं का रुझान अधिक होता है। आठवीं लोक सभा चुनावों के विषय में डॉ. वेद प्रकाश 'वैदिक' लिखते हैं कि 40 वर्षीय राजीव गांधी उन मतदाताओं की स्वाभाविक पसन्द बने, जिनकी आयु 21 से 35 वर्ष के बीच थी।

7. समकालीन मुद्दे (Contemporary Issues)- भारत में चुनावों के समय चर्चित मुद्दों का मतदाताओं के व्यवहार पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है। 1977 के आम चुनावों में आपातकालीन ज्यादतियों का मतदाताओं पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था, तो 1985 के लोक सभा चुनावों में इन्दिरा गाधी की हत्या से उत्पन्न सहानुभूति ने मतदाताओं को बहुत प्रभावित किया था। 1989 के लोक सभा चुनावों में भ्रष्टाचार का मुद्दा मुख्य चुनावों में रहा था, तो 1999 के लोक सभा चुनावों में कारगिल युद्ध का मुद्दा। इसी प्रकार संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन-2 के कार्यकाल के अन्तिम वर्षों में हुए एक के बाद एक घोटाले 16वीं लोक

सभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी की भारी पराजय का कारण बने। निःसंदेह, महँगाई, बेरोजगारी, आतंकवाद एवं युद्ध ऐसे विषय रहे हैं, जिन्होंने भारतीय मतदाताओं को बहुत प्रभावित किया है।

8. उम्मीदवारों की छवि (Image of Candidates)- चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की मतदाताओं की नजर में छवि का भी मतदाताओं के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। मतदाताओं की नजरों में उम्मीदवारों की नकारात्मक या सकारात्मक छवि अवश्य होती है और यह किसी-न-किसी प्रकार से मतदाताओं पर अवश्य ही प्रभाव डालती है। कुछ समय पहले तक ईमानदार उम्मीदवार बिना अधिक प्रयास किए चुनाव जीत जाया करते थे, किन्तु अब ईमानदार व्यक्ति चुनावी राजनीति से दूर हो रहते हैं। फिर भी, हम यह नहीं कह सकते हैं कि उम्मीदवारों की छवि का मतदाताओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

9. दबाव समूह (Pressure Groups)- जहाँ दबाव समूह राजनीतिक दलों एवं प्रशासकों को प्रभावित करते हैं. वहीं ये अपनी पसंद के उम्मीदवारों को सफल बनाने के लिए विभिन्न तरीकों से मतदाताओं को प्रभावित करने का काम भी करते हैं। भारत में भारतीय किसान यूनियन एवं जातिगत दबाव समूहों की मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करने में उल्लेखनीय भूमिका रहती है।

10. उम्मीदवारों का व्यक्तित्त्व (Personality of Candidates) — मतदान व्यवहार को निर्धारित करने में उम्मीदवारों का अपना व्यक्तित्त्व भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक प्रभावशाली व्यक्तित्त्व वाला उम्मीदवार मतदाताओं को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रहता है विशेष रूप से तब, जब उसके प्रतिद्वन्द्रियों का व्यक्तित्त्व प्रभावशाली न हो।

11. व्यक्तिगत सम्पर्क (Personal Contact)- कोई उम्मीदवार मतदाताओं से कितने निकट से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करता है अथवा मतदाताओं को उम्मीदवारों के सम्बन्ध में कितनी जानकारी है. यह बात भी मतदाताओं के निर्णय को प्रभावित करती है। भारत में अधिकांश मतदाता ऐसे होते हैं, जो व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण उम्मीदवार के पक्ष में मत डालते हैं।

12. चुनाव प्रचार (Election Campaign)- आधुनिक युग प्रचार का युग है। चुनाव प्रचार से मतदाता बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। प्रचार के कारण सच को झूठ और झूठ को सच बनाने में अधिकाँश दल एवं उम्मीदवार सफल हो जाते हैं। कोई राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों के लिए कितना चुनाव प्रचार करता है और चुनाव प्रचार के लिए कौन से साधन अपनाता है. इसका मतदाताओं पर प्रभाव पड़ता है। चुनावों में जितना अधिक प्रचार किया जाता है, उतनी ही अधिक सफलता की सम्भावना रहती है। इसी कारण सभी राजनीतिक दल चुनावों में प्रचार के लिए भिन्न-भिन्न साधनों का प्रयोग करते हैं।

13. किसी दल अथवा उम्मीदवार की जीत की सम्भावना (Possibility of Victory of a Party or a Candidate)- भारत में कुछ मतदाता किसी राजनीतिक दल अथवा उम्मीदवार की जीत की सम्भावना को ध्यान में रखकर भी मतदान करते हैं ताकि उनका मत बेकार न जाए और आने वाले समय में वे विजयी उम्मीदवार से लाभ भी उठा सकें। अनेक मतदाता यह निर्णय नहीं कर पाते कि वे किसके पक्ष में मत डालें। यदि उन्हें किसी तरह यह विश्वास हो जाए कि अमुक दल अथवा उम्मीदवार के जीतने की सम्भावना है, तो वे उसी दल अथवा उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करते हैं। भारत के चुनावों में 'लहर' एक दल को जिताने और दूसरे दल को हराने में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है।

14. सरकार की स्थिरता (Stability of Government) - भारत में मतदान व्यवहार इस बात पर भी निर्भर करता है कि कौन-सा राजनीतिक दल देश को या किसी राज्य को स्थायी एवं सुदृढ़ सरकार प्रदान कर सकता है। आम तौर पर भारतीय मतदाता एक स्थायी तथा सुदृढ़ सरकार चाहते हैं। इन्होंने मार्च, 1977 में जनता पार्टी को इसी आशा से सत्ता सौंपी थी, किन्तु जब यह दल ऐसा करने में सफल नहीं हुआ, तो 1980 के लोक सभा चुनावों में उन्हीं मतदाताओं ने जनता पार्टी के स्थान पर कांग्रेस पार्टी को सत्ता सौंप दी।

16. भाषा (Language)- भारत एक बहु-भाषाई राज्य है। यहाँ राजनीति में धर्म एवं जाति के पश्चात् यदि किसी तत्व का प्रभाव है, तो यह भाषा ही है। भारत में भाषा के नाम पर चुनाव लड़े एवं जीते जाते हैं। यहाँ अनेक राज्यों में चुनावों का आधार भाषा होती है। दक्षिण भारत में विशेषकर तमिल नाडु में जो राजनीतिक दल हिन्दी का जितना अधिक विरोध करता है, उतनी ही अधिक उसके जीतने की सम्भावना होती है।

17. क्षेत्रवाद (Regionalism)- भारत में मतदाताओं के व्यवहार को नियन्त्रित एवं प्रभावित करने में क्षेत्रवाद की भी भूमिका होती है। आज भारत में छः-सात राष्ट्रीय दल हैं, किन्तु भारतीय जनता पार्टी को छोड़कर, कोई भी राष्ट्रीय दत्त इतना प्रभावशाली नहीं है कि वह क्षेत्रीय दलों के सहयोग के बिना केन्द्र में सरकार का निर्माण कर सके। अब एक-दो दल की गठबंधन सरकारें नहीं, बल्कि 20-22 दलों की गठबन्धन सरकारें अस्तित्त्व में आने लगी हैं।

18. लोक-लभावने नारे (Populistic Slogans)- भारतीय मतदाता राजनीतिक दलों द्वारा समय-समय पर निकाले गए लोकलुभावने नारों से प्रभावित होते रहे हैं। 1971 के चुनावों में इन्दिरा गांधी का नारा था, 'गरीबी हटाओ'। 'काग्रेस का हाथ-गरीबों के साथ', 'कांग्रेस बार-बार भारतीय जनता पाटी एक बार' 'अबकी बारी अटल बिहारी' 'अबकी बार-मोदी सरकार' 'पाँच साल, केजरीवाल' कुछ ऐसे ही नारे हैं। 2004 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी ने प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को 100 दिन का काम देने का वादा किया था। जनता इन नारों से प्रभावित होकर किसी विशेष दल के पक्ष में मतदान कर देती है

19. युद्ध में सफलता (Success in War) - जब देश में युद्ध के तुरन्त पश्चात् मतदान होता है, तो मतदाता युद्ध में जीत या हार को ध्यान में रखकर मतदान करते हैं। युद्ध में जीतने की स्थिति में सत्तारूढ़ दल के चुनाव जीतने की अधिक सम्भावना रहती है। 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में भारत की विजय ने कांग्रेस पार्टी को आने वाले चुनावों में भारी सफलता दिलवायी थी। इसी प्रकार 13वीं लोक सभा के चुनावों में कारगिल युद्ध ने भारतीय जनता पार्टी को सफलता दिलाने का कार्य किया था। इस तरह भारतीय मतदाता युद्ध में सफलता एवं असफलता से प्रभावित होते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion) - भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले उपर्युक्त तत्त्वों के वर्णन से यह स्पष्ट है कि ये तत्त्व किसी विशेष क्षेत्र, वर्ग अथवा समुदाय को प्रभावित नहीं करते, वरन् सभी मतदाताओं को प्रभावित करते हैं। बस अन्तर केवल इतना ही है कि किसी चुनाव में एक या दो तत्त्व मतदाताओं के व्यवहार को निर्धारित करने में निर्णायक भूमिका अभिनीत करते हैं, तो किसी दूसरे चुनाव में दूसरे तत्त्व।

Unit-III

भारतीय दलीय प्रणाली की विशेषताएँ/प्रकृति (Features/Nature of Indian Party System)

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त उभरी भारत की दलीय प्रणाली की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं-

1. बहु-दलीय प्रणाली (Multi-Party System) – भारत की दलीय प्रणाली की प्रमुख विशेषता बहु-दलीय प्रणाली है। यहाँ फ्रांस एवं स्विट्जरलैंड की भाँति बहु-दलीय प्रणाली है। 1996 में हुए लोक सभा चुनावों के समय भारत में ऐसे आठ राष्ट्रीय दल और 30 क्षेत्रीय दल थे, जिन्हें चुनाव आयोग द्वारा मान्यता प्रदान की गयी थी। वर्तमान में देश में सात राष्ट्रीय दल है-(1) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, (ii) भारतीय जनता पार्टी, (ii) भारतीय साम्यवादी दल. (iv) भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी). (v) बहुजन समाज पार्टी, (vi) राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी एवं (vii) तृण मूल कांग्रेस। इन राष्ट्रीय दलों के अतिरिक्त भारत में अनेक क्षेत्रीय दल भी मौजूद हैं; जैसे-तमिल नाडु में, डी.एम.कं.. ए.आई. अन्ना.डी.एम.के. एवं तमिल मनीला कांग्रेस गठबंधन, आआंध्र प्रदेश में तेलुगू देशम, पंजाब में अकाली दल, पंजाब लोक कांग्रेस, हरियाणा में इण्डियन नेशनल लोक दल एवं जनता जननायक पार्टी, बिहार में राष्ट्रीय जनता दल एवं जनता दल (यू.), पश्चिम बंगाल में तृण मूल कांग्रेस, उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी आदि।

2. एक दल की प्रधानता के युग की समाप्ति (End of the Era of One Party Dominance) - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में काफी समय तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभुत्व बना रहा। चौथे आम चुनावों (1967) से पहले केन्द्र और प्रायः सभी राज्यों में कांग्रेस पार्टी को ही प्रधानता रही। चौथे आम चुनावों 1967 में आठ राज्यों में कांग्रेस पार्टी को बहुमत प्राप्त न होने के कारण इनमें गैर-काग्रेसी सरकारें बनीं, किन्तु ये अधिक समय तक नहीं चल सकी। 1971 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को बहुत भारी सफलता मिली और केन्द्र में इसकी सरकार स्थापित हुई। आपात काल के दौरान किए गए अत्याचारों के

कारण मार्च, 1977 में होने वाले आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को भारी पराजय का सामना करना पड़ा, जिसके कारण पहली बार केन्द्र में गैर-कांग्रेसी सरकार बनी। अप्रैल-मई, 2014 में हुए 16वीं लोक सभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी की करारी हार हुई, क्योंकि इसे मात्र 44 सीटें ही प्राप्त हुई। 2014 और 2019 के चुनावों में जरूर बीजेपी पार्टी की प्रधानता रही , लेकिन अब ऐसा लगता है कि भारतीय राजनीति में एक दल का प्रभुत्व जरूर समाप्त हो गया है।

3. सांप्रदायिक एवं क्षेत्रीय दल (Communal and Regional Parties)- भारतीय दलीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता सांप्रदायिक एवं क्षेत्रीय दलों का होना है। मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा आदि सांप्रदायिक दल ही कहलाएँगे। यहाँ सांप्रदायिक दलों के साथ-साथ अनेक क्षेत्रीय दलों का भी गठन किया गया। इनमें जम्मू एवं कश्मीर की नेशनल कॉन्फ्रेंस , आंध्र प्रदेश की तेलुगू देशम , तमिल नाडू की डी.एम.के. एवं ए.आई. अन्ना डी.एम.के, पंजाब का अकाली दल , उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी, ओडिशा का बीजू जनता दल आदि प्रमुख हैं। ये दल अपने-अपने राज्यों में सत्तारूढ़ रहते हैं: जैसे-उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, हरियाणा में इण्डियन नेशनल लोक दल। इतना ही नहीं मोदी सरकार में कई क्षेत्रीय दल भागीदारी रहे हैं।

4. प्रभावशाली विरोधी दल का उदय (Rise of Effective Opposition)- 1989 से पहले भारत में कोई प्रभावशाली विरोधी दल नहीं रहा, क्योंकि यहाँ एक ही दल अर्थात कांग्रेस पार्टी का प्रभुत्व था। यही आम चुनावों में सबसे अधिक सीटें प्राप्त करती थीं यद्यपि मार्च 1971 के चुनावों के समय कांग्रेस (संगठन) , भारतीय जन संघ एवं समाजवादी पार्टी ने राष्ट्रीय स्तर पर गठजोड़ करने का प्रयास किया था, किन्तु इसमें इन्हें कोई सफलता नहीं मिली थी।

मार्च 1977 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी को काफी स्थान प्राप्त हुए, फिर भी आन्तरिक फूट के कारण यह शक्तिशाली विरोधी दल के रूप में कार्य नहीं कर सकी। जनवरी, 1978 में कांग्रेस पार्टी के विभाजन के पश्चात् कांग्रेस (आई) के नेता सी.एम. स्टीफन को लोक सभा में और कमलापति त्रिपाठी को राज्य सभा में विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता दी गयी, किन्तु 1980 एवं 1984 के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को भारी बहुमत प्राप्त हुआ, जिसके कारण विपक्षी दलों की स्थिति इतनी खराब हो गयी कि इनमें से कोई भी दल अपनी शक्ति के आधार पर लोक सभा में विपक्षी दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने की स्थिति में नहीं रहा। किन्तु 1989 के लोक सभा के चुनावों के पश्चात् कांग्रेस पार्टी संगठित विरोधी दल के रूप में स्थापित हुआ। 1991 के लोक सभा चुनावों में 117 स्थान प्राप्त करके भारतीय जनता पार्टी विरोधी दल के रूप में स्थापित हुई और एल. के. आडवाणी को विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता मिली।

जब 1996 में हुए लोक सभा चुनावों के पश्चात् जब भारतीय जनता पार्टी द्वारा अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया, तो कांग्रेस पार्टी की विरोधी दल के रूप में मान्यता दी गयी। जब भारतीय जनता पार्टी की सरकार गिर गयी, तो पहले एच.डी. देवेगौड़ा और बाद में इंद्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा सरकार का गठन किया गया, तो भारतीय जनता पार्टी, जो लोक सभा में सबसे बड़ा दल था, के नेता अटल बिहारी वाजपेयी की विरोधी दल के नेता के रूप में मान्यता मिली। 16वीं लोक सभा में तो कांग्रेस मान्यता प्राप्त विरोधी दल का दर्जा प्राप्त नहीं था, किनु राज्य सभा में यह मजबूत स्थिति में थी। वर्तमान लोकसभा में कांग्रेस पार्टी मुख्य विपक्षी दल की भूमिका में हैं।

5. विचारधारा की अपेक्षा व्यक्तित्त्व पर अधिक बल (More Emphasis on Personality Rather than Ideology)- भारतीय दलीय व्यवस्था की एक विशेषता यह है कि राजनीतिक दलों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विचारों की अपेक्षा व्यक्ति (नेता) को अधिक महत्त्व दिया जाता है। कांग्रेस पार्टी 1964 तक पण्डित जवाहर लाल नेहरू के नाम से चलती रही। तत्पश्चात् इसके साथ 1984 तक इन्दिरा गांधी का नाम और 1991 तक राजीव गांधी का नाम जुड़ा रहा। 1980 के आम चुनावों में काग्रेस पार्टी की जीत एक प्रकार से इंदिरा गांधी की जीत थी। 1984 के चुनावों में कांग्रेस पार्टी की विजय का मुख्य कारण प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी की हत्या से उत्पन्न सहानुभूति की लहर थी। इसी प्रकार भारतीय जनता पार्टी का नाम अटल बिहारी वाजपेयी एवं एल.के. आडवाणी के नाम से जुड़ा रहा है। जनता दल वी.पी. सिंह एवं चंद्रशेखर के नाम से जुड़ा हुआ था। समता पार्टी जॉर्ज फर्नांडिस और बहुजन समाज पार्टी पहले कांशीराम और अब मायावती के नाम जुड़ी हुई है। वर्तमान में बीजेपी पार्टी श्री नरेंद मोदी के नाम से जानी जाती है।

6. स्वतंत्र सदस्य (Independent Members)- यद्यपि भारत में बहु-दलीय प्रणाली मौजूद है, फिर भी, यहाँ संसद एवं राज्य

विधानमण्डलों में स्वतंत्र अथवा निर्दलीय सदस्यों की काफी संख्या देखने को मिलती है।

7. राजनीतिक दलों की नीतियों एवं कार्यक्रमों में स्पष्ट भेद का अभाव (Absence of Clear-cut Distinction of Policies and Programmes among Political Parties)- भारत की दलीय प्रणाली की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ एक-दो दलों को छोड़कर बाकी राजनीतिक दलों की विचारधाराओं एवं नीतियों में कोई खास भेदभाव देखने को नहीं मिलता। उदाहरण के लिए कांग्रेस पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल (यू) जनता दल (एस), राष्ट्रीय लोक दल, आदि सभी पार्टियाँ समाजवाद, धर्म-निरपेक्षता, लोकतंत्र के नारे लगाती हैं। अनेक राजनीतिक दलों के पास कोई निश्चित कार्यक्रम न होने के कारण उनके द्वारा विध्वंसकारी कार्यों का सहारा लिया जाता है या फिर क्षेत्रीय भावनाओं को उभारा जाता है।

8. अवसरवादिता की प्रवृत्ति (Trend of Opportunism)- भारतीय राजनीति में शुरू से ही अवसरवादिता चली जा रही है। हाल के वर्षों में यह उग्र रूप धारण करती जा रही है। 1980 में केरल विधान सभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी एवं जनता पार्टी ने एक-दूसरे के साथ मिलकर चुनाव लड़ा था। जब कि लोक सभा में ये दोनों दल एक-दूसरे के विरोधी थे। पंजाब में अकाली दल एवं भारतीय जन संघ ने मिलकर सरकार की स्थापना की थी। इसी प्रकार कांग्रेस पार्टी ने तमिल नाडु में डी.एम.के. के साथ गठबंधन किया, जब कि कुछ वर्ष पहले अर्थात् संकटकाल में प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी ने तमिल नाडु की सरकार को तोड़ा था। अकाली दल के नेता प्रकाश सिंह बादल एवं जगदेव सिंह तलवण्डी जम्मू-कश्मीर के चुनावों में डॉ फारुख अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेस के पक्ष में काम करने के लिए गए थे। 1989 के लोक सभा चुनावों के उपरान्त जनता दल ने परस्पर विरोधी माने जाने वाले साम्यवादी दलों एवं भारतीय जनता पार्टी के बाहरी समर्थन से सरकार का गठन किया था। 1996 के लोक सभा चुनावों के पश्चात् केन्द्र में सत्ता में आने के लिए 13 दलों द्वारा गठित संयुक्त मोर्चा इसका सष्ट उदाहरण है। चुनावों से पूर्व और चुनावों के समय ये दल एक-दूसरे का पूरी तरह से विरोध कर रहे थे, किन्तु सत्ता के लालब ने इन्हें परस्पर जोड़ दिया था। कुछ ऐसी ही स्थिति 1998 में हुए लोक सभा चुनावों के पश्चात् उत्पन्न हुई। पश्चिम बंगाल में कांग्रेस पार्टी एवं साम्यवादी दलों ने एक-दूसरे का जोरदार विरोध किया और एक-दूसरे के विरुद्ध अपने उम्मीदवार खड़े किए, किन्तु भारतीय जनता पार्टी को सत्ता से बाहर रखने के लिए साम्यवादी दल कांग्रेस पार्टी का समर्थन करने को तैयार थे।

9. राजनीतिक दलों का पंजीकरण (Registration of Political Parties) - संसद द्वारा 1988 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन किया गया, जिसके अनुसार राजनीतिक दलों के लिए चुनाव आयोग के पास पंजीकृत होना अनिवार्य कर दिया गया। अब कोई दल तब तक राजनीतिक दल नहीं माना जाता है, जब तक वह चुनाव आयोग के पास पंजीकृत नहीं होता। पंजीकरण के लिए प्रत्येक राजनीतिक दल को चुनाव आयोग में आवेदन-पत्र भेजना होता है, जिसके साथ उसे अपने संविधान की एक प्रति भी लगानी होती है। अप्रैल-मई 2014 में हुए 16वीं लोक सभा चुनाव के समय निर्वाचन आयोग के पास 1687 राजनीतिक दलों के नाम दर्ज थे।

10. दलों का ढीला संगठन (Loose Organisation of Political Parties)— भारत के अधिकांश का संगठन ढीला - ढाला है जिसके चलते सदस्यों में अनुशासन का अभाव है। यहाँ राजनीतिक दलों में शामिल अधिक नेता अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दलीय अनुशासन की परवाह नहीं करते। यदि दल के किसी सदस्य को किसी चुनाव में टिकट नहीं मिलता तो वह दल से त्यागपत्र देकर दल के अधिकृत उम्मीदवार के विरुद्ध चुनाव में खड़ा हो जाता है। कॉ बार ऐसे सदस्य अपना अलग ही दल बना लेते हैं।

11. राजनीतिक दलों में गुटबंदी (Factionalism in Political Parties) - भारत की दलीय प्रणाली की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ प्रायः सभी दलों में गुटबंदी मौजूद है। गुटबंदी के चरम सीमा पर पहुंचने के कारण हो 1969 में कांग्रेस पार्टी का विभाजन हुआ था। 1977 में जिस जनता पार्टी का गठन हुआ था, उसमें प्रारंभ से ही गुटबंदी चली जा रही थी। सतारूढ़ दलों में प्रायः एक गुट मंत्रियों का और दूसरा गुट असंतुष्टों का होता है। असंतुष्ट गुट खुलेआम सत्ताधारी गुट की आलोचना करता है और उसमें शामिल नेताओं पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाता है। 16वीं लोक सभा के चुनावों (2014) के समय अनुशासित मानी जाने वाली भारतीय जनता पार्टी में गुटबंदी स्पष्ट नजर आयी थी, जब पार्टी के कुछ वरिष्ठ नेताओं-एल. के. आडवाणी एवं मुरली मनोहर जोशी ने नरेन्द्र मोदी के प्रधान मंत्री पद के उम्मीदवार के रूप में चुने जाने का विरोध किया था।

12. दल-बदल (Defections)- भारत की दलीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता है-दल-बदल की प्रवृत्ति। यहाँ 1957 से लेकर 1970 तक 4000 विधायकों में से लगभग 1400 विधायकों ने दल-बदल किया था। दल-बदल को इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए समय-समय पर प्रयास किए गए, लेकिन इस कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई। अन्ततः 1985 में 52वें संशोधन अधिनियम द्वारा दल-बदल पर रोक लगाने का सार्थक प्रयास किया गया, लेकिन फिर भी दल-बरत जारी रहा। इसे नियन्त्रित करने के लिए 2003 में 91वाँ संशोधन अधिनियम लाया गया। इस दिशा में यह एक सख्त कदन था, लेकिन तब भी दल-बदल पर पूरी तरह अंकुश नहीं लग पाया। अक्टूबर 2009, में हुए हरियाणा विधान सभा चुनावों के बाद हरियाणा जनहित कांग्रेस के पाँच विधायकों का कांग्रेस पार्टी में शामिल हो जाना यही सिद्ध करता है। वर्तमान में भी दल-बदल जारी है।

13. राजनीतिक दलों के अन्दर आन्तरिक लोकतंत्र का अभाव (Lack of Inner Democracy within Political Parties) - भारत के राजनीतिक दलों की एक अन्य विशेषता यह है कि इनमें आन्तरिक लोकतंत्र देखने को नहीं मिलता है। वस्तुतः यहाँ राजनीतिक दल लोकतांत्रिक सिद्धांतों एवं मूल्यों पर आधारित नहीं है। यहाँ राजनीतिक दलों के संगठनात्मक चुनाव वर्षों तक नहीं होते हैं। अप्रैल 1992 में 22 वर्षों के बाद कांग्रेस पार्टी के संगठनात्मक चुनाव हुए थे।

1998 के बाद से लेकर वर्तमान अर्थात मार्च, 2022 तक कांग्रेस पार्टी के संगठनात्मक चुनाव नहीं हुए। संगठनात्मक चुनाव न होने से प्रायः दलों में तानाशाही की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। यहाँ राजनीतिक दलों द्वारा आम कार्यकर्ताओं अथवा सदस्यों की सहमति से निर्णय नहीं लिए जाते हैं, बल्कि दलों के शीर्षस्थ नेताओं द्वारा ही निर्णय लिए जाते हैं। प्रधान मंत्री या मुख्य मंत्री का चयन दल के सांसदों या विधायकों द्वारा नहीं, बल्कि दलों के हाई कमाण्ड द्वारा किया जाता है।

15. गैर-संवैधानिक निकाय (Extra-Constitutional Bodies) - भारतीय संविधान ने देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की है, जिसके सफल संचालन करने के लिए राजनीतिक दलों का होना अनिवार्य है, किन्तु संविधान में राजनीतिक दलों की व्यवस्था नहीं की गयी है। इस नाते, चीन के विपरीत, भारत में राजनीतिक दल गैर-संवैधानिक निकाय हैं।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका (Role of Regional Parties in Indian Politics)

आज भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दल महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा कर रहे हैं। आज देश में 50 से भी अधिक पंजीकृत क्षेत्रीय दल हैं, जो विभिन्न राज्यों में शासक दल अथवा प्रमुख विरोधी दल के रूप में कार्य कर रहे हैं। क्षेत्रीय दल अपने-अपने राज्य में अच्छी सरकारें चला रहे हैं और राज्य का विकास कर रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश में लम्बे समय तक तेलुगू देशम पार्टी ने शासन किया, जिसमें राज्य के प्रत्येक क्षेत्र का विकास हुआ। चन्द्र बाबू नायडू देश के सफल मुख्य मंत्रियों में से एक रहे हैं। इसी प्रकार करुणानिधि, जयललिता, देवी लाल. रामकृष्ण हेगड़े, नवीन पटनायक, मुलायम सिंह यादव, प्रकाश सिंह बादल, फारुख अब्दुल्ला आदि ऐसे गैर-कांग्रेसी मुख्य मंत्री रहे हैं, जिन्होंने न केवल राज्यों की राजनीति को, बल्कि राष्ट्रीय राजनीति को भी प्रभावित किया है।

1989 के बाद केन्द्र सरकार के निर्माण में क्षेत्रीय दलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। 1989 में जनता दल के गठन के बाद वी.पी. सिंह के नेतृत्व में बनी राष्ट्रीय मोर्चा सरकार में कई क्षेत्रीय दलों की प्रमुख भूमिका रही थी। इसी प्रकार 1996 में बनी भारतीय जनता पार्टी की सरकार 13 दिन ही चल पायी, क्योंकि उसे क्षेत्रीय दलों का समर्थन नहीं मिल पाया था। 1998 एवं 1999 में बनी केन्द्र सरकारों में क्षेत्रीय दलों का योगदान रहा। 1998 में क्षेत्रीय दलों के समर्थन से अटल बिहारी वाजपेयी की जिस सरकार का गठन हुआ था, वह ऑल इण्डिया अन्ना डी.एम.के. द्वारा समर्थन वापस लिए जाने के कारण 13 महीने बाद गिर गयी थी। 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में बनी 'राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन' को सरकार में जो 24 घटक शामिल थे, उनमें अधिकांश क्षेत्रीय दल ही थे। 2004 एवं 2009 में डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में केन्द्र में जिन संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकारों का गठन हुआ, उनमें भी कई क्षेत्रीय दल शामिल थे; जैसे राष्ट्रीय लोक दल, लोक जन शक्ति पार्टी, द्रविड़ मुनेत्र कड़गम, तेलंगाना राष्ट्र समिति, पी.एम.के., एम.डी.एम. के.. झारखंड मुक्ति मोर्चा आदि। वर्तमान की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार में अनेक क्षेत्रीय दल सत्ता में भागीदार है।

क्षेत्रीय दलों के बढ़ते हुए प्रभाव से देश की राजनीति के साथ-साथ भारतीय संघीय प्रणाली भी प्रभावित हुई है। आज राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी नहीं है. क्योंकि राज्य अनेक क्षेत्रों में स्वतंत्र नीति अपना रहे हैं। ऐसे अनेक अवसर भी देखे गए, जब राज्य सरकारों ने केन्द्र सरकार के आदेशों की अवहेलना की। राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें बनने के बाद केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में भी परिवर्तन हुआ है। आज राज्य सरकारें केन्द्र पर दवाव की राजनीति करती हैं। कभी-कभी तो ये सौदेबाजी एवं प्रतियोगिता की राजनीति भी करती है। क्षेत्रीय दलों के बढ़ते प्रभाव और केंन्द्र सरकार में क्षेत्रीय दलों की भागीदारी से प्रधान मंत्री की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार हम कह सकते है कि आज भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दल निर्णायक भूमिका अभिनीत कर रहे हैं।

1989 के लोक सभा चुनावों के समय क्षेत्रीय दलों की सख्या 20 तक पहुँच गयी थी। इसके बाद भी क्षेत्रीय दलों का गठन किया जाता रहा। 11वीं लोक सभा के चुनावों (1998) के समय इनकी संख्या बढ़कर 30 और 13वीं लोक सभा के चुनावों (1999) के समय यह संख्या बढ़कर 40 हो गयी। 15वीं लोक सभा के चुनावों (2009) के समय देश में मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय दलों की संख्या 46 और गैर-मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय दलों की संख्या 980 थी। 16वीं लोक सभा के चुनावों (2014) के समय चुनाव आयोग ने 56 क्षेत्रीय दलों को मान्यता प्रदान की थी। इन मान्यता-प्राप्त दलों के अलावा देश में सैकड़ों गैर-मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय दल भी हैं।

क्षेत्रीय दलों की न केवल सरकार बनाने में, बल्कि सरकार गिराने या गिरती सरकार को जीवनदान देने में भी भूमिका रही है। 1998 में गठित वाजपेयी सरकार तब अल्पमत में आ गयी थी, जब ऑल इण्डिया अन्ना डी.एम.के. ने इस सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया था। जब इस सरकार ने लोक सभा में विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया, तो नेशनल कांफ्रेंस नामक क्षेत्रीय दल की अन्दरूनी फूट के कारण यह सरकार एक मत से पराजित हो गयी, जिसके कारण प्रधान मंत्री को त्याग-पत्र देना पड़ा। इसी प्रकार, जब जुलाई, 2008 में अमेरिका के साथ परमाणु समझौते के मुद्दे पर 66 सदस्यों वाले साम्यवादी गुट ने मनमोहन सिंह सरकार से अपना समर्थन वापस लिया, तो यह सरकार अल्पमत में आ गयी। ऐसे नाजुक समय में इस गिरती सरकार को समाजवादी पार्टी ने. 'बिना किसी शर्त के', अपना समर्थन देकर डूबने से बचा लिया। इसी प्रकार, जब 2013 में द्वितीय मनमोहन सिंह सरकार से तृण मूल कांग्रेस नामक क्षेत्रीय दल ने अपना समर्थन वापस लिया, तो सरकार पर संकट के बादल मंडराने लगे। ऐसे समय में समाजवादी पार्टी ने इस सरकार की रक्षा की। इसी समय केन्द्र सरकार ने बिहार के क्षेत्रीय दल, जनता दल (यू.) के नेतृत्व से समर्थन प्राप्त करने की कोशिश भी की, जिससे कि समाजवादी पार्टी का समर्थन जारी न रहने की स्थिति में, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबन्धन से बाहर आयी इस क्षेत्रीय पार्टी का समर्थन लिया जा सके। प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी की पहली दो सरकारों में भी अकाली दल, शिव सेना, लोक जन शक्ति पार्टी जैसे कई क्षेत्रीय दल शामिल रहे हैं।

इतना ही नहीं, अनेक क्षेत्रीय दल प्रमुख मंत्रालय प्राप्त करने में भी सफल रहे हैं। 2004 एवं 2009 में सत्ता में आयो संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकारों में क्रमशः राष्ट्रीय जनता दल के नेता लालू प्रसाद यादव एवं तृण मूल कांग्रेस की नेता ममता बनर्जी ने रेलवे मंत्रालय जिद करके प्राप्त किया था। जिस तरह भारतीय राजनीति में परिवर्तन होता है, उसको देखकर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भविष्य में किसी क्षेत्रीय दल का नेता प्रधानं मंत्री के पद पर आसीन हो जाए। इसी प्रकार एक क्षेत्रीय दल अपने नेता जी.सी.एम. बालयोगी को पहले मार्च, 1998 में और आगे चलकर अक्टूबर 1999 में लोक सभा अध्यक्ष का पद दिलाने में सफल रहा था। जब मार्च, 2002 में बालयोगी का हेलीकॉपटर दुर्घटना में देहान्त हो गया था, तो महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दल शिव सेना के मनोहर जोशी ने लोक सभा अध्यक्ष का पद संभाला था।

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का भारतीय राजनीति पर प्रभाव (EFFECT OF REGIONAL PARTIES ON INDIAN POLITICS)

भारत की राजनीति, भारत की दल प्रणाली और समूची भारतीय राजनीतिक प्रणाली पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव अग्रलिखित शीर्षकों में वर्णित किए जा सकते हैं-

1. एक दल के राजनीतिक एकाधिकार का अन्त (End of Political Monopoly of one Political Party)-विदेशी परतन्त्रता से भारत को स्वतन्त्र करवाने में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी भारत के शासन की बागडोर इस दल ने ही सम्भाली थी। 1976 तक भारतीय राजनीति में इस दल का राजनीतिक एकाधिकार बना रहा था। 1967 से 1969 के मध्य, 1969 से 1971 के समय, 1977 से 1979, 1989 से 1991 तथा 1996 से 2004 के समय को छोड़कर शेष समय में कांग्रेस का ही राजनीतिक एकाधिकार प्रचलित रहा था। यह ठीक है कि कई राज्यों में कुछ क्षेत्रीय दलों अथवा राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की सरकारें समय-समय पर बनती रही थीं. परन्तु समूचे रूप में भारतीय राजनीति में कांग्रेस की प्रमुखता बनी रही थी। परन्तु क्षेत्रीय दलों के विकास ने 1989 से अब तक हुए चुनावों में कांग्रेस पार्टी के एकाधिकार को समाप्त कर दिया।

2. वास्तविक बहुदलीय प्रणाली कार्यरूप में (Real Multi-Party System in Operation)- आरम्भ से ही स्वतन्त्र भारत में बहुदलीय प्रणाली का अस्तित्व विद्यमान है। पर यह प्रणाली वास्तव में बहुदल प्रणाली नहीं थी, क्योंकि उस प्रणाली में कांग्रेस की राजनीतिक प्रमुखता इतनी अधिक थी कि उस प्रणाली को एक दल के प्रभुत्व वाली प्रणाली (Single Dominant Party System) कहा जाता था। 1976 तक भारत में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दत्तों की संख्या चाहे काफ़ी अधिक थी, परन्तु कांग्रेस की प्रमुखता के कारण भारत की दल प्रणाली वास्तविक तौर पर बहुदल प्रणाली नहीं मानी जाती थी। परन्तु 1967 के चुनावों से क्षेत्रीय दलों का विकास ऐसे रूप में होना आरम्भ हो गया था कि भारत की दल प्रणाली धीरे-धीरे वास्तविक बहुदलीय प्रणाली का रूप धारण करने लग पड़ी थी। 1989 से 2019 के मध्य हुए लोकसभा के नौ चुनावों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत में वास्तविक बहु-दलीय प्रणाली ने व्यावहारिक रूप धारण कर लिया है।

3. गठवन्धन की राजनीति का विकास (Rise of Coalitional Politics)- क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के कारण भारत में गठबन्धन की राजनीति का विकास हुआ है। पिछले पांच चुनावों में त्रिशंकु संसद् (Hung Parliament) के अस्तित्व में आने के कारण सारे राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को यह विश्वास हो गया है कि अन्य राजनीतिक दलों के साथ गठबन्धन किए बिना कोई भी दल राजनीतिक शक्ति को ग्रहण नहीं कर सकता है। इसीलिए कोई भी राजनीतिक दत्त अकेले तौर पर चुनाव लड़ने को तैयार नहीं है।

4. केन्द्र में साझा सरकारों का आगमन (Advent of Coalitional Governments at the Centre)-क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की बढ़ती महत्ता के फलस्वरूप ही केन्द्र में सांझा सरकारों का आगमन हुआ है। ऐसी साझा सरकारों में क्षेत्रीय दल भी शामिल हुए हैं। साझा सरकारों के निर्माण का मुख्य कारण ही यह है कि अनेकों ही क्षेत्रीय दलों के प्रतिनिधि लोकसभा के सदस्य चुने जाते हैं।

5. अल्पमत की सरकारों का निर्माण (Formation of Minority Governments) — क्षेत्रीय दलों ने न केवल साझा सरकारों के निर्माण को आवश्यक बना दिया है, अपितु क्षेत्रीय दलों की बढ़ती राजनीतिक महत्ता के कारण ही अल्पमत की सरकारों का निर्माण भारतीय राजनीति की साधारण विशेषता बन गई है। अल्पमत की सरकार से अभिप्राय ऐसी सरकार से है जिसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त नहीं होता है और ऐसी सरकार कुछ अन्य राजनीतिक दलों के बाहरी समर्थन पर निर्भर करती है।

6. केन्द्र सरकार की कमज़ोर स्थिति (Weak Position of Central Government)- अल्पमत की सरकार में भिन्न-भिन्न विचारधाराओं वाले कई राजनीतिक दल शामिल होते हैं। ऐसी सरकार कई अन्य राजनीतिक दलों के बाहरी समर्थन पर भी निर्भर करती है। ऐसी सरकार में राजनीतिक एकरूपता की भी कमी होती है। ऐसी स्थिति में केन्द्र सरकार महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए कम ही स्वतन्त्र होती है। प्रधानमन्त्री सरकार में शामिल सभी राजनीतिक दलों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्हें खुश रखना चाहता है और इस उद्देश्य के लिए उन राजनीतिक दलों का अनुचित दबाव भी विवशतापूर्वक उसे सहना पड़ता है। केन्द्र सरकार में भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सहभागिता के कारण केन्द्र सरकार की स्थिति कमजोर होती है और सरकार के लिए दीर्घकालीन नीतियों का निर्माण करना एक कठिन समस्या होती है।

7. राष्ट्रीय राजनीतिक दलों का पतन (Decline of National Political Parties) - क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की बढ़ती संख्या और महत्ता राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के पतन के लिए उत्तरदायी है। चुनाव आयोग के पास पंजीकृत 2700 से भी

अधिक राजनीतिक दलों में से केवल 8 दल ही राष्ट्रीय राजनीतिक दल हैं और शेष दल क्षेत्रीय स्वरूप के हैं। जब राष्ट्रीय राजनीतिक दलों को महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय राजनीतिक दलों और कुछ छोटे-छोटे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के साथ भी विवशतापूर्वक चुनावी समझौते करने पड़े तो राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की महत्ता का पतन होना बिल्कुल स्वाभाविक होता है।

8. संघवाद का नवीन रूप (New Form of Federalism)- कांग्रेस की राजनीतिक प्रमुखता वाले दौरे में भारत में सहयोगी संघवाद का अस्तित्व था। केन्द्र और राज्यों में एक ही दल की सरकारें होने के कारण केन्द्र और राज्यों में तनाव कम ही पैदा होता था। जब केन्द्र में कांग्रेस दल की सरकार थी और कई राज्यों में कुछ अन्य राजनीतिक दलों की सरकारें काम कर रही थीं तो केन्द्र सरकार अनुच्छेद 356 का प्रयोग करके अन्य दलों की राज्य सरकारों को प्रायः भंग कर देती थी। परन्तु अब केन्द्र सरकार में कुछ क्षेत्रीय दलों की सहभागिता के कारण केन्द्र सरकार के लिए अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय दलों के बढ़ते राजनीतिक महत्त्व के परिणामस्वरूप केन्द्रवाद (Centralism) की प्रवृत्ति का विकास होना रुक गया है और अब राज्यों को अधिक शक्तियां और अधिक वित्तीय साधन देने की बात तोर पकड़ती जा रही है।

9. राजनीतिक अस्थिरता का विकास (Development of Political Instability) — क्षेत्रीय दलों की संख्या काफी अधिक होने के कारण किसी एक राष्ट्रीय राजनीतिक दल के लिए लोकसभा में बहुमत प्राप्त करना कठिन समस्या बन गई है। इसी कारण भिन्न-भिन्न विचारधारा वाले क्षेत्रीय और राष्ट्रीय राजनीतिक दल चुनावी गठबन्धन के लिए विवश होते हैं। ऐसे असैद्धान्तिक गठबन्धन निश्चित तौर पर राजनीतिक अस्थिरता को जन्म देते हैं।

10. भारतीय संसदीय प्रणाली के लिए चुनौती (Challenge for Indian Parliamentary System) — क्षेत्रीय दलों की बढ़ती संख्या के कारण पैदा हुई राजनीतिक अस्थिरता भारत की संसदीय शासन प्रणाली के लिए एक गम्भीर चुनौती बनती जा रही है। इस राजनीतिक अस्थिरता ने भारतीय संसदीय प्रणाली को कायम रहने के विषय में प्रश्न चिह्न पैदा कर दिया है। राजनीतिक अस्थिरता के माहौल में संसदीय शासन प्रणाली की कुशल कार्यशीलता सम्भव नहीं हो सकती है। भारत में राजनीतिक दलों की बढ़ती संख्या के कारण पैदा हुई राजनीतिक अस्थिरता ने ही भारत में संसदीय शासन प्रणाली के स्थान पर अध्यक्षात्मक प्रणाली लागू करने की मांग को जन्म दिया है।

11. क्षेत्रवाद का बढ़ता प्रभाव (Increasing Influence of Regionalism) - क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने क्षेत्रवाद की राजनीति को काफी अधिक प्रेरित किया है। काफी क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का प्रभाव कुछ-क्षेत्र विशेष तक ही सीमित होता है। क्षेत्रीय दलों का मुख्य आधार ही किसी विशेष क्षेत्र के हितों की सुरक्षा और विकास को विश्वसनीय बनाना है। जब क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सरकारों का निर्माण होता है तो उन राज्यों में ही वे दल अधिक सक्रिय होते हैं और और उन राज्यों के लोगों के हितों के विकास के लिए अधिक वचनबद्ध होते हैं। क्षेत्रीय दलों के ऐसे दृष्टिकोण ने क्षेत्रवाद की राजनीति को अधिक प्रेरित किया है और ऐसी राजनीति लोगों में राष्ट्रवादी भावना के पतन का महत्त्वपूर्ण कारण बनती है।

भारतीय दल प्रणाली के समक्ष आने वाली समस्याएं (PROBLEMS FACING THE INDIAN PARTY SYSTEM)

भारतीय दल प्रणाली को पेश आने वाली महत्त्वपूर्ण समस्याएं इस प्रकार हैं-

1. राजनीतिक दलों की बहुत अधिक संख्या (Too Many Political Parties) - हमारे देश में वर्तमान सभा में 8 राष्ट्रीय राजनीतिक दलों और 52 राज्य स्तर के राजनीतिक दलों को चुनाव आयोग की मान्यता प्रदान की हुई है। इन मान्यता प्राप्त दलों के अतिरिक्त लगभग 2700 से अधिक ऐसे राजनीतिक दल थे जिन्होंने चुनाव आयोग के पास अपना पंजीकरण करवाया था, परन्तु उन्हें चुनाव आयोग की मान्यता प्राप्त नहीं थी। राजनीतिक दलों की बहुत अधिक संख्या राजनीतिक अस्थिरता, दल परिवर्तन, राजनीतिक दलों के असैद्धान्तिक मिश्रण, भ्रष्टाचार और राजनीतिक अविश्वास को जन्म देती है।

2. सैद्धान्तिक एवं संगठित विपक्षी दल का अभाव (Lack of Principled and Ideological Opposition)-भारत में राजनीतिक दलों की संख्या अत्यधिक होने के कारण अनेकों ही राजनीतिक दल विपक्षी दलों की भूमिका निभाते हैं। सरकारी रूप में चाहे एक ही राजनीतिक दल को विपक्षी दल के रूप में मान्यता दी जाती है, परन्तु व्यावहारिक रूप में अनेकों ही

राजनीतिक दल विपक्षी स्थानों पर बैठते हैं। विरोधी राजनीतिक दलों में कोई सैद्धान्तिक आधार न होने के कारण हमारे देश में सैद्धान्तिक रूप में संगठित विरोधी दल का विकास नहीं हुआ।

3. संगठन की समस्या (Problem of Organization) - भारत में राजनीतिक दलों की सबसे गम्भीर समस्या संगठन का अभाव है। यह समस्या एक-दो दलों की नहीं, बल्कि अधिकांश दलों की है। क्षेत्रीय दलों के पास तो नाम भर का संगठन है। भारत में राजनीतिक दलों के संगठनों के चुनाव नहीं होते हैं और यदि होते भी हैं, तो केवल दिखावे भर के लिए। कांग्रेस पार्टी सबसे पुराना एवं संगठित दल माना जाता है, किन्तु कई बार विघटन के कारण इसका अब वह रूप नहीं रहा है।

4. दल-बदल की समस्या (Problem of Defection)- भारत की दलीय प्रणाली एक और समस्या से घिरी है और वह समस्या है-दल-बदल। यहाँ दल-बदल ने राजनीतिक अस्थिरता एवं नैतिकता-विहीन राजनीति को जन्म दिया है। पश्चिम के लोकतांत्रिक देशों में भी दल-बदल होता है, लेकिन वहाँ यह सिद्धांतों एवं आदशों पर आधारित होता है। इसके विपरीत, भारत में दल-बदल विशुद्ध रूप से सत्ता की प्राप्ति के लिए किया जाता है। भारत में एक-दो दलों के अलावा, शेष दलों में कोई वैचारिक मतभेद नहीं है, इसलिए यहाँ नेता लोग जल्दी-जल्दी दलीय निष्ठाएँ बदलते रहते हैं।

5. जनाधार की समस्या (Problem of Popular Base)- जन समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रत्येक राजनीतिक दल के पास जनाधार होना चाहिए। भारत में कुछ दलों को छोड़कर बाकी दलों के पास जनाधार नहीं है। कुछ समय पहले तक कांग्रेस गार्टी ही ऐसा दल था, जिसे देश के सभी क्षेत्रों और समाज के सभी वर्गों का समर्थन प्राप्त था। लेकिन 16वीं लोक सभा के चुनावों के परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया था कि यह दल अपना जनाधार गवाँ बैठा है। जहाँ तक भारतीय जनता पार्टी का प्रश्न है. इसका जनाधार घटता बढ़ता रहता है। वर्तमान में इसमें अनेक अवसरवादी लोग शामिल हैं। कर्नाटक को छोड़कर, इस दल का दक्षिण के दूसरे राज्यों में जनाधार नहीं है।

6. नेतृत्व की समस्या (Problem of Leadership) - भारत के अधिकांश राजनीतिक दल नेतृत्व के संकट से जूझ रहे हैं, क्योंकि इनके नेता अवसरवादी एवं संकुचित दृष्टिकोण वाले हैं। कांग्रेस पार्टी के पास कुशल एवं प्रभावी नेतृत्व नहीं हैं, तो भारतीय जनता पार्टी अपने वरिष्ठ नेताओं की अनदेखी करते हुए एक-दो व्यक्ति में केन्द्रित हो गयी प्रतीत होती है। क्षेत्रीय दल, जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, क्षेत्रीय नेताओं की जागीरें बन गए हैं।

7. गुटबाजी की समस्या (Problem of Factionalism)- भारत के लगभग सभी राष्ट्रीय दल गुटबाजी/गुटबन्दी के शिकार हैं, जिनके कारण इनका कभी विघटन, तो कभी विलय चलता रहता है। इसी गुटबाजी के चलते काग्रेस पार्टी का कम-से-कम दो बार विघटन हो चुका है। 1977 में निर्मित जनता पार्टी तो जन्म से ही गुटबाजी की शिकार थी। भारतीय जनता पार्टी भी एक समय दो गुटों में विभाजित थी वाजपेयी गुट एवं आडवाणी गुट। 16वीं लोक सभा के चुनावों के ठौक पहले इसकी गुटबाजी सतह पर आ गयी थी। गुटबाजी के कारण 1964 में भारतीय साम्यवादी दल का विभाजन हुआ था। राष्ट्रीय दलों में गुटबाजी स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक देखी जा सकती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि अकाली दल, समाजवादी पार्टी, जनता दल (यू) और शिव सेना जैसे क्षेत्रीय दल भी गुटबाजी का शिकार हैं।

8. धन की समस्या (Problem of Money)- भारत में लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं के आम चुनावों के अलावा, मध्यावधि चुनाव एवं उप-चुनाव भी होते रहते हैं। इन चुनावों में राजनीतिक दलों को धन की आवश्यकता होती है। यहाँ उस दल के जीतने की अधिक सम्भावनाएँ होती हैं, जिसके पास पर्याप्त मात्रा में धन होता हैं। इसीलिए चुनावों में खुलकर धन खर्च करना और सत्तारूढ़ होने पर अनुचित साधनों से धन इकट्ठा करना राजनीतिक दलों की एक आम विशेषता बन चुकी है।

9. सिद्धान्तहीन समझौते (Un-Principled Alliances) – भारत में सिद्धान्तहीन समझौते करने में राजनीतिक दलों में एक-दूसरे को पीछे छोड़ने की दौड़ लगी हुई है। यहाँ सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से राजनीतिक दल अपने घोर विरोधी दलों से भी समझौते कर सकते हैं। 12वीं लोक सभा में ऑल इण्डिया अन्ना डी.एम.के. के समर्थन वापस लिए जाने के कारण वाजपेयी सरकार का पतन हो गया था, किन्तु 14वीं लोक सभा के चुनाव राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन एवं ऑल इण्डिया अन्ना डी.एम.के. ने साथ-साथ लड़े थे। अक्टूबर, 2014 में महाराष्ट्र विधान सभा के चुनावों के पहले 25 वर्षों से चला आ रहा भाजपा एवं शिव

सेना का गठबन्धन टूट गया था और दोनों ने एक-दूसरे के विरुद्ध चुनाव लड़ा था, लेकिन सरकार बनाने के लिए दोनों ने एक-दूसरे से हाथ मिला लिया। 2019 के विधान सभा चुनावों के बाद यह गठबन्धन टूट गया और शिव सेना ने कांग्रेस पार्टी एवं राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के साथ मिलकर सरकार बनायी।

10. राजनीतिक दलों का अपराधीकरण (Criminalization of Political Parties)- हाल के वर्षों में प्रायः सभी दलों में अपराधी लोग घुस आए हैं, जिससे दलों की विश्वसनीयता को खतरा उत्पन्न हो गया है। इस मामले में उत्तर प्रदेश एवं बिहार सबसे आगे हैं। उल्लेखनीय है कि 14वीं लोक सभा में 128 सांसद आपराधिक पृष्ठभूमि वाले थे, तो 15वीं लोक सभा में 153 सांसद। 16वीं लोक सभा भी इस मामले में पीछे नहीं रही। इसमें 186 सांसदों के विरुद्ध विभिन्न न्यायालयों में मामले लम्बित थे।

11. संकुचित मानसिकता (Narrow-mindedness)- वैसे तो स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भी कई राजनीतिक दलों का निर्माण धर्म, जाति, सम्प्रदाय अथवा क्षेत्र के आधार पर हुआ था, किन्तु तब ऐसा ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण होता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक दलों की स्थापना धर्म, जाति, सम्प्रदाय, क्षेत्र के आधार पर होना कम ही नहीं, बल्कि इसमें वृद्धि हुई है। इस तरह के राजनीतिक दल चुनावों में मतदाताओं के मत बटोरने के लिए संकीर्ण मुद्दे उछालते रहते हैं ।

विरोधी दलों की भूमिका

भारत में विपक्षी दल अग्रलिखित तरह की भूमिका का निर्वाह करता है-

1. विपक्षी दल का बहु-दलीय स्वरूप (Multi-Party Character of the Opposition)- हमारे देश की संसद् में विरोधी दल का बहु-दलीय स्वरूप है। संसद् के दोनों सदनों में सरकारी तौर पर चाहे एक ही राजनीतिक दल को विरोधी दल के रूप में मान्यता दी जाती है, किन्तु वास्तव में अनेक राजनीतिक दल विपक्षी दलों के रूप में कार्य करते हैं। इस तरह की स्थिति भारतीय लोकतन्त्र को कमजोर करती है। संसद् में बहु-पक्षीय विपक्षी दल होने के कारण न तो जनता की इच्छा का सही प्रतिनिधित्व होता है और न ही शासक दल का कोई विकल्प (Alternative) उपलब्ध होता है। इसी कारण भारत में एक दल नहीं, बल्कि अनेक दल विपक्ष दल के रूप में कार्य करते हैं। मिली-जुली सरकारों के आने से यह स्वरूप और बढ़ गया है।

2. सरकार से सहयोग (Co-operation with Government)- यदि किसी विपक्षी दल सरकार से असहयोग करें तो सरकार का कुशलतापूर्वक संचालन असम्भव हो सकता है। यह ठीक है कि शासक दल तथा विपक्षी दलों की राजनीतिक विचारधाराएं परस्पर विरोधी हो सकती हैं, परन्तु राष्ट्रीय विषयों के प्रति राजनीतिक दलों के दृष्टिकोणों में सामंजस्य होना अनिवार्य है। शासक दल का यह राष्ट्रीय कर्त्तव्य है कि वह सरकार के संचालन के विषय में समय-समय पर विपक्षी दलों के साथ विचार-विमर्श करे तया महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओं के विषय में उसका सहयोग प्राप्त करें। विपक्षी दलों का भी यह राष्ट्रीय कर्तव्य है कि वे सरकार के साथ रचनात्मक सहयोग करें तथा महत्त्वपूर्ण विषयों के प्रति अपनी सम्पत्ति सरकार को समय-समय पर देते रहें।

3. आलोचना (Criticism)- विपक्षी दलों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सरकार की नीतियों तथा कार्यों की सकारात्मक आलोचना (Positive Criticism) करना है। यह अनिवार्य नहीं कि प्रत्येक विषय के प्रति शासक दल की सम्मति अथवा नीति उचित हो। विपक्षी दलों को प्रत्येक विषय के प्रति अपनी नीति सरकार को स्पष्ट रूप में बतानी चाहिए। यदि सरकार विपक्षी दल की आवाज को कोई महत्त्व नहीं देती तो विरोधी दलों को संवैधानिक साधनों के द्वारा शासक दल की नीतियों के विरुद्ध जनमत को विकसित करना चाहिए।

4. लोकमत का निर्माण (Formulation of Public Opinion)- प्रतिनिधि लोकतन्त्र में समय-समय पर चुनाव होते हैं। इन चुनावों में प्रत्येक राजनीतिक दल की सफलता अथवा असफलता उसके पक्ष अथवा विपक्ष में स्थापित लोकमत पर निर्भर करती है। इसलिए अपने पक्ष में लोकमत का निर्माण करना प्रत्येक राजनीतिक दल का अनिवार्य कार्य है। परन्तु शासक दल के अवगुणों को लोगों के समक्ष प्रस्तुत करके अपने पक्ष में जनमत का निर्माण करना विपक्षी दलों का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। यदि विपक्षी दल अपने इस कार्य की पूर्ति नहीं करते तो शासक दल की प्रमुखता स्थिर रहेगी तथा विपक्षी दलों की

अवहेलना के कारण यह प्रभुत्व किसी समय शासक दल के अधिनायकतन्त्र का रूप धारण कर सकता है।

5. जन-शिकायतों की अभिव्यक्ति (Ventilation of Public Grievances)- विपक्षी दलों का यह महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य है कि वे लोगों की शिकायतों को संवैधानिक साधनों के द्वारा सरकार तक पहुंचाए। विधानमण्डल में भी विपक्षी दल जन-शिकायतों तथा कठिनाइयों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। यदि विपक्षी दल जागृत हों तो महत्त्वपूर्ण जन शिकायतों को विधान-मण्डल के सामान्य वाद-विवाद का विषय भी बनाया जा सकता है। यदि विपक्षी दल जन शिकायतों को सरकार तक पहुंचाने का अपना कर्त्तव्य पूर्ण नहीं करते तो लोगों में असन्तोष उत्पन्न हो सकता है तथा वे अपनी शिकायतों को दूर कराने के लिए आन्दोलन के मार्ग पर चलने के लिए विवश हो सकते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)- भारत जैसी लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली में विपक्षी दलों की भूमिका का क्षेत्र कठोर रूप में निश्चित नहीं किया जा सकता। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि किसी भी लोकतन्त्र को सफल बनाना विपक्षी दलों की कार्यशील भूमिका पर ही निर्भर करता है। जहां प्रभावशाली विपक्षी दलों का अभाव है, वहां वास्तव में लोकतन्त्र नहीं हो सकता।

हित एवं दबाव समूह

दबाव-समूह की परिभाषा (DEFINITION OF PRESSURE GROUP)

कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

मि० ढिल्लन के अनुसार, "साधारण शब्दों में हित-समूह ऐसे लोगों का एक समुदाय है जिनमें परस्पर हितों की समानता है। ऐसे हित-समूह उस समय दबाव समूह का रूप धारण कर लेते हैं जब वे अपने लाभों की प्राप्ति के लिए सरकारी सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।"

हिचनर और हार्वेत्ड के अनुसार, "दबाव समूह के शब्द ऐसे व्यक्तियों के समूह को बताने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं, जिनके कुछ संयुक्त उद्देश्य हैं और जो राजनीतिक कार्यों द्वारा सार्वजनिक नीति को प्रभावित करके उन उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। साधारण रूप से हित समूह वह है, जो सरकार से कुछ प्राप्त करना चाहता है।"

आलमण्ड और पावेल के अनुसार, "हित समूह से हमारा तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों के समूह से है जो किसी विशेष हित अथवा लाभ के लिए परस्पर मिले हुए हों और जिनमें हितों के सम्बन्ध में चेतना है।"1

बी० एम० चैटांगी के अनुसार, "दबाव समूहों को उन लोगों का औपचारिक संगठन कहा जा सकता है जिनके एक या एक से अधिक हित होते हैं और जो अपने हितों की रक्षा या विकास के लिए घटित हुई घटनाओं को विशेष करके सरकार द्वारा जनहित नीति के निर्माण और उसके कार्यान्वित को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।"3

संक्षिप्त रूप में हम कह सकते हैं कि दबाव समूह ऐसी प्राइवेट (निजी) संस्थाएं हैं जो अपने हितों की रक्षा और उन्नति के लिए सार्वजनिक नीति को अनेक साधनों द्वारा प्रभावित करती है। ऐसे समूहों का मुख्य उद्देश्य सरकारी नीतियों को प्रभावित करके अपने हितों की रक्षा करना होता है।

दबाव समूह की विशेषताएं (CHARACTERISTICS OR FEATURES OF PRESSURE GROUPS)

उपर्युक्त दबाव समूह की परिभाषाओं के आधार पर हम इसकी विशेषताओं का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते हैं-

1. समान हित (Common Interest) - किसी विशेष समान हित का अस्तित्व दबाव समूह का मूल आधार है। समान हित ही व्यक्तियों को समूह के रूप में संगठित होने की प्रेरणा देते हैं और समान हित की रक्षा और उन्नति के लिए ही व्यक्तियों का समूह सरकारी नीतियों को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है। यह प्रसिद्ध कहावत है कि एक जैसे पंखों वाले पक्षी एक साथ उड़ते हैं। इस प्रकार परस्पर समान हितों वाले लोग सामूहिक रूप से संगठित होकर अपने हितों की रक्षा के लिए प्रयत्न करते हैं। विशेष समान हित के अतिरिक्त कोई विशेष सार्वजनिक उद्देश्य भी दबाव समूह का आधार हो सकता है। ऐसा समूह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न साधनों द्वारा सरकार पर दबाव डाल सकता है।

2. गैर-राजनीतिक स्वरूप (Non-political Character) - दबाव समूह राजनीतिक स्वरूप के नहीं होते। वे देश की राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते। साधारण चुनावों में अपने प्रत्याशी खड़े नहीं करते। ऐसी बातें दबाव समूह के गैर-राजनीतिक स्वरूप को व्यक्त करती हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दबाव समूह देश की राजनीति में कोई रुचि नहीं रखते। अपने हितों की रक्षा और उन्नति के लिए देश की राजनीति में रुचि रखना दबाव समूहों के लिए अति आवश्यक है। वे अक्सर उस राजनीतिक दल से सौदेबाजी करते हैं और उस दल के प्रत्याशियों का समर्थन करते हैं जो उनके हितों की रक्षा करने का वचन देता है।

3. संगठन (Organisation) - दबाव समूह विशेष रूप से संगठित किए जाते हैं ताकि ये अपने हितों की रक्षा के लिए उचित साधनों द्वारा सरकार की नीतियों को प्रभावित कर सकें। बड़े-बड़े दबाव समूहों के प्रतिनिधि देश की राजधानी में मौजूद होते हैं और वे मन्त्रियों, विधायकों और सरकारी उच्चाधिकारियों से सम्पर्क बनाए रखते हैं। इस सम्पर्क द्वारा ही उनको सरकारी नीतियों के भेद प्राप्त होते हैं और वे सरकार से राजनीतिक सौदेबाज़ी करते हैं। बिना संगठन के किसी दबाव समूह के लिए अपने उद्देश्यों को प्राप्त करना बहुत कठिन है।

4. संवैधानिक मान्यता-रहित संगठन (Extra-Constitutional Agencies) - दबाव समूहों का अस्तित्व कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है, अपितु यह संवैधानिक मान्यता से वंचित संगठन है। औद्योगिक देशों में दबाव-समूहों का अस्तित्व अधिक होता है क्योंकि विभिन्न उद्योगों के स्वामी अपने व्यवसाय के विस्तार के लिए सरकार का संरक्षण प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। दबाव समूहों को यद्यपि संवैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं होती, परन्तु देश की संवैधानिक प्रणाली की कार्य-कुशलता पर उनके कार्यों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

भारत में दबाव समूह

विशिष्ट व्यावसायिक दबाव समूह (Special Occupational Pressure Groups) - इस प्रकार के दबाव समूहों में निम्नलिखित दबाव समूह सम्मिलित किए जाते हैं-

1. संगठित व्यापारिक दबाव समूह (Organised Business Pressure Groups) - हमारे देश में उद्योग एवं व्यापार कुछ एक परिवारों के पास केन्द्रित होकर रह गया है। उदाहरणार्थ अंबानी, टाटा, बिरला, डालमिया, गोइनका, थापर आदि कुछ ऐसे परिवार हैं जिन्होंने भारतीय उद्योग पर अधिकार किया हुआ है।

हमारे देश में कुछ औद्योगिक संस्थाएं जैसे कि **ओरिएण्टल वाणिज्य संघ (Oriental Chamber of Commerce), राष्ट्रीय वाणिज्य संघ (National Chamber of Commerce), भारतीय वाणिज्य संघ (Indian Chamber of Commerce)** हैं। ये सभी औद्योगिक संस्थाएं एक प्रकार के दबाव समूह ही हैं जो अनेक साधनों के द्वारा सरकार की नीतियों पर दबाव डालते हैं। अखिल भारतीय उत्पादक संगठन (All Indian Manufactures Organisation) एवं संयुक्त वाणिज्य संघ (Associated Chamber of Commerce) के नाम विशेषतया वर्णनीय है ।

2. व्यापारिक संघ (Trade Unions)-1920 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधीन अखिल भारतीय व्यापारिक संघों की कांग्रेस (All India Trade Union Congress) स्थापित हुई है। व्यापारिक संघ के रूप में भारत में स्थापित होने वाला यह प्रथम दबाव समूह था। 1948 में भारतीय राष्ट्रीय व्यापारिक संघ कांग्रेस (Indian National Trade Union Congress) स्थापित की गई थी। इसके अतिरिक्त हिन्द मजदूर सभा (Hind Mazdoor Sabha), संघ व्यापारिक संघ कांग्रेस (United

Trade Union Congress), हिन्द मजदूर परिषद् (Hind Mazdoor Parishad) आदि ऐसे संगठन हैं जो दबाव समूह के रूप में भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

3. कृषक संगठन (Peasants Organisation) - भारत मुख्यतया कृषि प्रधान देश है। कृषि के प्रति सरकार की नीतियां देश की अत्यधिक जनसंख्या को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। कृषकों ने अपने हितों की रक्षा के लिए अनेक संगठनों का निर्माण किया है। ऐसे कुछ महत्त्वपूर्ण कृषक संगठन इस प्रकार हैं-

(a) अखिल भारतीय किसान सभा (All India Kisan Sabha) भारतीय किसान संघ (गुजरात)

(b) हिन्द किसान पंचायत (Hind Kisan Panchayat)

(c) संयुक्त किसान सभा (United Kisan Sabha)

(d) क्रान्तिकारी किसान सम्मेलन (Revolutionary Peasants Convention)

(e) श्रमिकों एवं कृषकों का दल (Workers and Peasants Party)

4. पेशेवर दबाव समूह (Professional Pressure Groups) - पेशेवर दबाव समूहों से अभिप्राय ऐसे समूहों से है जो विशेषकर किसी एक पेशे या धन्धे के साथ सम्बन्धित हैं। व्यापारिक संघों के विपरीत ऐसे समूहों का उद्देश्य अपने पेशों की, आर्थिक हितों की न केवल सुरक्षा करना होता है, अपितु यह समूह अपने पेशे के मुख्य उद्देश्यों अभिप्राय अपने धन्धे की भलाई के लिए भी कार्य करते हैं। ऐसे दबाव समूहों में निम्नलिखित संघ या संस्थाएं शामिल की जा सकती हैं-

(a) अखिल भारतीय कर्मचारी संघ (All India Federation of Employees)

(b) अखिल भारतीय डॉक्टरी संघ (All India Medical Association)

(c) अखिल भारतीय डाक और तार कर्मचारी संघ (All India Postal and Telegraph Workers Union)

(d) अखिल भारतीय बैंक कर्मचारी संघ (All India Banks Employees Association)

(e) अखिल भारतीय विश्वविद्यालय और कॉलेज प्राध्यापक संघ (All India Federation of University and College Teachers)

(f) अखिल भारतीय वकील संघ (All India Bar Association)

(g) हरियाणा अनुसूचित जाति राजकीय अध्यापक संघ (Haryana Anusuchit Jati Rajkiya Adhiayapak Sangh)

5. धार्मिक एवं जाति दबाव-समूह (Religious and Caste Pressure Groups) - भारत एक ऐसा देश है जहां विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोग रहते हैं। उनके धार्मिक एवं जाति-हितों की रक्षा के लिए अनेक प्रकार के धार्मिक एवं जातीय समूह विद्यमान हैं। कुछ संगठनों के नाम इस प्रकार हैं-

(a) ऐंग्लो-इण्डियन ईसाई संघ (Anglo-Indian Christian Association)

(b) कैथोलिक संघ (Catholic Association)

(c) जमात-ए-इस्लामी (Jammat-e-Islami)

(d) अनुसूचित जातियों का संघ (Scheduled Castes Federation)

(e) वनायकूल क्षत्रिय संघ (Vanuiyakul Kashastriya Sangh)

इसके अतिरिक्त कबायली प्रदेशों में मिलते निम्नलिखित संगठन भी भारतीय राजनीति में और विशेषतया सम्बद्ध प्रान्त की राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं-

(a) बिहार और उड़ीसा में अखिल भारतीय झारखण्ड (All India Jharkhand in Bihar and Orissa)

(b) नागा राष्ट्रीय परिषद् (Naga National Council)। (c) असम का कबायली संघ (Tribal Sangh of Assam)

(d) असम का कबायली संगठन (Tribal League of Assam)

(e) संयुक्त मिजो संघात्मक संगठन (United Mizo Federal Organisation)

(f) खासी जैन्तिया ग्रामीण संगठन (Khasi Jaintia Rural Organisation)

(g) खासी जैन्तिया राष्ट्रीय संयुक्त राज्य कांफ्रेंस (Khasi Jaintia National Federated State Conference)

(h) पूर्व भारतीय कबायली संघ (Eastern Indian Tribal Union)

6. भाषीय दबाव समूह (Linguistic Pressure Groups)- भारत एक ऐसा देश है जहां सैकड़ों भाषाएं बोली जाती हैं। 22 भाषाओं को संविधान के द्वारा मान्यता दी गई है और हिन्दी की देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय भाषा घोषित किया गया है। अपनी भाषा की रक्षा एवं विकास के लिए भाषायी समूह सरकार की नीतियों पर दबाव डालने का प्रयत्न करता है। ऐसे कुछ भाषायी संगठन इस प्रकार हैं-

(i) आन्ध्र महासभा (Andhra Mahasabha)

(ii) तमिल संघ (Tamil Sangh)

(iii) गोरखा संघ (Gorkha League)

(iv) नागा विदर्भ आन्दोलन समिति (Naga Vidarbha Andolan Samiti)

7. विद्यार्थी दबाव समूह (Students Pressure Groups)- युवक प्रत्येक देश की महान् शक्ति होते हैं। यद्यपि इस बात का शक्तिशाली प्रचार किया जाता है कि विद्यार्थियों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, परन्तु भारत में कोई भी ऐसा राजनीतिक दल नहीं है जिसने विद्यार्थियों को अपने पक्ष में करने कोई संगठन स्थापित न किया हो। विद्यार्थियों के कुछ संगठन इस प्रकार है-

(a) भारतीय विद्यार्थी राष्ट्रीय संघ (National Students Union of India)

(b) विद्यार्थी संघ (Students Federation)

(c) अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (Akhil Bhartiya Vidyarathi Parishad)

(d) प्रगतिशील विद्यार्थी संगठन (Progressive Students Union)

(e) समाजवादी विद्यार्थी संगठन (Socialist Students Organisation)

(f) समाजवादी युवजन सभा (Smajwadi Yuvjan Sabha)

(g) अखिल भारतीय सिक्ख विद्यार्थी संघ (All India Sikh Students Federation)

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों के और भी कुछ संगठन हैं जो भारतीय राजनीति में थोड़ी बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

8. गांधीवादी विचारधारा पर आधारित समूह (Groups based on Gandhian Ideology) - महात्मा गांधी को भारतीय राष्ट्रवादी होने का सम्मान प्राप्त है। गांधी जी के अपने कुछ राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विचार थे जिन्हें वे स्वतन्त्र भारत में कार्यान्वित करना चाहते थे, परन्तु स्वतन्त्रता के तत्काल पश्चात् ही स्वर्गवास हो जाने के कारण वे अपने सपनों को साकार न करे सके। परन्तु भारत में कई ऐसे समूह स्थापित हुए हैं जो गांधीवादी सिद्धान्तों को लागू करवाने के लिए सरकार पर दबाव डालते हैं। गांधीवाद पर आधारित दबाव समूह इस प्रकार हैं -

(a) भूदान आन्दोलन (Bhoodan Andolan) (b) सर्व-सेवा संघ (Sarv-Sewa Sangh)

(c) ग्रामीण औद्योगिक संघ (Village Industrial Association)

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के दबाव समूहों के अतिरिक्त प्रान्तीय स्तर पर भी कुछ दबाव समूह विद्यमान हैं जो प्रान्तीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

दबाव समूहों के साधन (Means of Pressure Groups)

भारत में दबाव समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित साधनों का प्रयोग करते हैं-

1. प्रचार (Propaganda) - दबाव समूह जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए प्रचार करते हैं। ये अपनी मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक एवं दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करते हैं और इनके माध्यम से जनमत को अपने पक्ष में करके सरकार से अपने हितों के अनुकूल नीतियाँ बनवाने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये विभिन्न सम्मेलनों का आयोजन करके अपने सदस्यों में चेतना उत्पन्न करते हैं। इन सम्मेलनों में विभिन्न स्तरों की इकाइयों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं और अपने संगठन को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए अपने सुझाव देते हैं। इसके अतिरिक्त, ये समय-समय पर सभाओं का आयोजन करके जनमत को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते हैं।

2. चुनावों में भागीदारी (Participation in Elections) - यद्यपि दबाव समूह प्रत्यक्ष रूप से चुनावों में भाग नहीं लेते हैं. फिर भी ये चुनाव में ऐसे राजनीतिक दलों अथवा उम्मीदवारों का समर्थन करते हैं, जो इनके विचारों से सहमत हों और इनके हितों की पूर्ति का आश्वासन देते हों। ये राजनीतिक दलों अथवा उम्मीदवारों को आर्थिक सहायता देते हैं और इन्हें चुनाव प्रचार के लिए अपने कार्यकर्ता भी उपलब्ध कराते हैं।

3. लॉबीइंग (Lobbeying) - 'लॉबीइंग' शब्द अमेरिका से लिया गया है। वहाँ राजनीतिक जीवन में 'लॉबीइंग' एक संस्था बन चुकी है। दबाव समूहों द्वारा विधानमण्डल के सदस्यों को किसी विधेयक के पक्ष अथवा विपक्ष में मत देने के लिए राजी करने के कार्य को 'लॉबीइंग' के नाम से जाना जाता है। दबाव समूह अपने वैतनिक प्रतिनिधियों द्वारा लॉबीइंग का कार्य करते हैं। ये 'लॉबीइस्ट्स' विधानमण्डल के सदस्यों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करते हैं और उन्हें किन्हीं विशेष विधेयकों का समर्थन अथवा विरोध करने के लिए राजी करने का प्रयत्न करते हैं। ये लॉबीइस्ट्स विधायकों को प्रभावित करने के लिए उचित अनुचित सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग करते हैं।

4. हड़ताल एवं प्रदर्शन (Strike and Demonstration) - दबाव समूह सरकार से अपनी माँगे मनवाने के लिए समय-समय पर प्रदर्शनों एवं हड़तालों का आयोजन करते रहते हैं। ये समूह हड़ताल एवं प्रदर्शन द्वारा सरकार को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे कि जनमत इनके पक्ष में रहे और सरकार भी इनके पक्ष में नीतियाँ बनाएँ। ऐसा करने पर दबाव समूह कुछ

सीमा तक अपने उद्देश्य में सफल भी हो जाते हैं।

5. जनता के साथ सम्पर्क (Contact with Masses) - दबाव समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जनमत को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न करते हैं। ये जनता के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करते हैं और किसी विधेयक का समर्थन अथवा विरोध करने के लिए उसे उकसाते हैं। ये कभी-कभी जनता के दृष्टिकोण को अपने अनुकूल करने के लिए धन भी खर्च करते हैं। ये अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जनता के दृष्टिकोण को अपने अनुकूल बनाने का निरन्तर प्रयत्न करते हैं।

6. न्यायालयों का सहारा (Seeking Intervention of Courts) - दबाव समूह किसी ऐसे अधिनियम या आदेश,

जो उनके हितों पर आघात करने वाला हो, को लागू होने से रोकने के लिए न्यायालयों का सहारा भी लेते हैं। उदाहरण के लिए जब 1969 में केन्द्र सरकार ने कुछ निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था, तो उन दबाव समूहों, जिनके हितों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ना था, ने सरकार के इस कदम का विरोध किया था और सर्वोच्च न्यायालय में सरकार के इस निर्णय को चुनौती दी थी।

दबाव समूहों के कार्य (FUNCTIONS OF PRESSURE GROUPS)

दबाव समूहों के कार्यों को मुख्य रूप से हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर सकते हैं-

1. सदस्यों के हितों की रक्षा और विकास (Protection and Promotion of the Interests of Members)- प्रत्येक प्रकार के दबाव समूह का मुख्य उद्देश्य अपने वर्ग के हितों की रक्षा और विकास करना होता है। संयुक्त उद्देश्य एक ही वर्ग या श्रेणी के सदस्यों को दबाव समूह के रूप में एकत्र अथवा संगठित होने का मुख्य आधार होता है। यदि कोई संयुक्त हित न हो तो लोगों के किसी संगठन को हित समूह की संज्ञा नहीं दी जा सकती। जहां तक दबाव समूह के कार्यों का सम्बन्ध है, इस विषय में हम यह कह सकते हैं कि जिस संयुक्त हित अथवा हितों को मुख्य रख कर दबाव समूह का निर्माण किया गया है उस संयुक्त हित अथवा हितों की रक्षा और विकास की प्राप्ति करना ही प्रत्येक दबाव समूह का एकमात्र उद्देश्य है। यहां यह वर्णनीय है कि प्रत्येक दबाव समूह अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति सरकारी नीतियों और निर्णयों को अपने पक्ष में प्रभावित करने से ही कर सकता है।

2. जन-नीतियों तथा कानूनों के निर्माण को प्रभावित करना (To influence the making of Public Policies and Laws)- अपने सदस्यों के हितों की सुरक्षा के लिए प्रत्येक प्रकार के दबाव समूह के लिए यह अनिवार्य है कि वह सरकार के द्वारा अपनाई जाने वाली नीतियों को अपने हितों के लिये प्रभावित करें। इस उद्देश्य के लिए दबाव समूह सरकार पर विभिन्न विधियों द्वारा दबाव डालने का प्रयत्न करते हैं। जननीतियों तथा कानूनों के निर्माण में दबाव समूह प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते, किन्तु दबाव समूह जनसभाओं, प्रदर्शनी तथा बातचीत के द्वारा सरकार की नीतियों तथा कानूनों के निर्माण को अपने हितों की सुरक्षा के लिए प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।

3. राजनीतिक दलों को अपने प्रभावाधीन रखना (To keep the Political Parties under their Influence)-दबाव समूह सरकारी नीतियों को प्रभावित करने के लिए राजनीतिक दलों को अपने प्रभावाधीन रखने का प्रयत्न करते हैं। इस उद्देश्य के लिए वे राजनीतिक दलों को गुप्त रूप से पर्याप्त मात्रा में चन्दा देते हैं और चुनाव के समय राजनीतिक दलों के माध्यम से अपने प्रत्याक्षी भी खड़े करते हैं। राजनीतिक दलों को धन की बहुत आवश्यकता होती है। इस कारण वे बड़े-बड़े उद्योगपतियों, व्यापारियों आदि से सहायता प्राप्त करते हैं। ऐसी सहायता के बदले में राजनीतिक दल वर्गीय दबाव समूहों को यथासम्भव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रयत्नों द्वारा सरकार का संरक्षण (Patronage) प्रदान करते हैं।

4. प्रचार करना (To make Propaganda) - दबाव समूहों (Cause Groups) को जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए अपने उद्देश्य का प्रचार करने की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य के लिए वह आन्दोलन भी चलाते हैं ताकि जनमत को प्रभावित किया जा सके।

5. परामर्शदायी कार्य (Consultative Functions)- दबाव समूह अपने-अपने क्षेत्र के विषय में सरकार को नीति का निर्माण करने के समय परामर्श देते हैं। सरकार के भिन्न-भिन्न विभाग सम्बद्ध दबाव समूहों से उनके व्यवसायों के विषय में आवश्यक सूचना प्राप्त करते हैं और दबाव समूहों के प्रतिनिधि सरकार को नई ग्रहण की जा रही नीति के विषय में या तो प्रोत्साहित करते हैं अथवा उसके दुष्परिणामों के विषय में ये सरकार को चेतावनी देते हैं।

6. संसदीय समितियों के समक्ष प्रस्तुत होना (To appear before the Parliamentary Committees)- जब संसद् कानूनों का निर्माण करती है तो कई बार विधेयकों को सम्बन्धित विषय की समिति के पास निरीक्षण के लिए भेजा जाता है। विधानमण्डल अथवा संसद् की ऐसी समितियां विधेयकों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विधेयक से प्रभावित होने वाले दबाव समूहों को अपने समक्ष प्रस्तुत होने के लिए कहती हैं। दबाव समूह अपने हितों की सुरक्षा के लिए अपनी ऐसी समितियों के समक्ष प्रस्तुत होने के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं। लोकतन्त्रीय देशों में लोगों को यह अधिकार प्राप्त होता है कि किसी विधेयक से प्रभावित होने वाले व्यक्ति अपना दृष्टिकोण विधानमण्डल अथवा संसदीय समिति के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार दबाव समूह संसदीय समितियों के समक्ष प्रस्तुत होने पर अपना दृष्टिकोण बताने का भी महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं।

7.प्रतियोगिताओं (चर्चाओं) का प्रबन्ध करना (To Organise Discussions) - बड़े-बड़े दबाव समूह समय-समय पर विषयों के विशेषज्ञों की प्रतियोगिताओं या चर्चाओं का प्रबन्ध करते हैं। इन प्रतियोगिताओं में सरकारी अधिकारियों को भी निमन्त्रित किया जाता है। इस विचार-विमर्श के द्वारा सरकार को विशेषज्ञों तथा सम्बन्धित दबाव समूह के विचार का तथा दबाव समूह को सरकार के विचारों का ज्ञान प्राप्त होता है।

निष्कर्ष (Conclusion) - दबाव समूहों के कार्यों के विषय में यह कहना ही उचित होगा कि प्रत्येक प्रकार के दबाव समूह के कार्य एक समान नहीं होते, परन्तु इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि प्रत्येक प्रकार के दबाव समूह का कार्य अपने मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति करना होता है और इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक प्रकार का दबाव समूह आवश्यक साधनों का प्रयोग करता है।

Unit-IV

भारतीय राजनीति पर जाति का प्रभाव

1. निर्णय-निर्माण प्रक्रिया पर प्रभाव (Impact on Decision-Making Process)- भारत में जातियाँ संगठित होकर राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तर पर निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। भारत के संविधान में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था की गयी थी। आगे चलकर 1990 में 'मण्डल आयोग' की सिफारिशों को लागू करते हुए 'अन्य पिछड़े वर्गों' (OBC) को भी सरकारी सेवाओं में आरक्षण दे दिया गया। अन्य अनेक जातियाँ चाहती हैं कि उन्हें भी अन्य पिछड़े वर्गों में शामिल किया जाए, ताकि वे भी इसका लाभ उठा सकें। राजस्थान में गुर्जरों ने आरक्षण के विषय में यह माँग कर डाली कि उन्हें अन्य पिछड़े वर्गों में शामिल किया जाए, ताकि उनकों मिलने वाले आरक्षण को न्यायालय अवैध घोषित न कर पाए। इसी प्रकार जुलाई-अगस्त 2015 में गुजरात में पटेल जाति ने भी यही माँग राज्य सरकार से कर डाली और इसके लिए आन्दोलन छेड़ दिया।

2. जातिगत आधार पर उम्मीदवारों का चयन (Selection of Candidates on Caste Basis)- भारत में चुनावों में राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारो का चयन प्रायः जातिगत आधार पर करते हैं। यहाँ राजनीतिक दल निर्वाचन क्षेत्रों के लिए उम्मीदवार मनोनीत करते समय जातिगत आंकड़ों का अवश्य ही विश्लेषण करते हैं। राजनीतिक पार्टियां चुनाव में टिकट देते समय जातीय समीकरणों को देखती हैं।

3. मतदान व्यवहार (Voting Behaviour) - भारत में चुनावों में जाति का एक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। उम्मीदवार जिस निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव लड़ रहे होते हैं, उस निर्वाचन क्षेत्र में जातीय भावना को उकसाया जाता है, ताकि

उम्मीदवारों को किसी विशेष जाति के मतदाताओं का समर्थन मिल सके। जनवरी, 1980 के चुनावों में उत्तर प्ररंश एवं बिहार के कुछ हिस्सों में लोक दल की सफलता पिछड़ी जातियों की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतीक थी।

4. मंत्रि-परिषदों का गठन (Formation of Council of Ministers) – भारत में राजनीतिक जीवन में जाति की जड़ें इतनी अधिक गहरी हो गयी हैं कि यहाँ मंत्रि-परिषदों का गठन करते समय जातिगत समीकरणों पर ध्यान दिया जाता है। यहाँ तक कि केन्द्रीय मंत्रि-परिषद में भी हरिजनों, जनजातियों, सिक्खों, मुसलमानों, ब्राह्मणों, जाटों, राजपूतों एवं कायस्थों को कोई-न-कोई स्थान अवश्य दिया जाता है। इतना ही नहीं, प्रायः हर प्रधान मंत्री विभागों का वितरण करते समय अल्पसंख्यक विभाग किसी अल्पसंख्यक समुदाय के व्यक्ति को सौंपता है।

5. जाति-आधारित दबाव समूह (Caste-Based Pressure Groups) - मेयर के अनुसार, भारत में "वास्तव में जातीय संगठन राजनीतिक महत्त्व के दबाव समूहों के रूप में कार्य कर रहे हैं।" जातीय दबाव समूह अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए नीति-निर्माताओं को जिस ढंग से प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं, उससे इनकी तुलना यूरोप एवं अमेरिका में पाए जाने वाले दबाव समूहों से की जा सकती है। अनेक जातीय संगठन; जैसे-तमिल नाडु में नाडार जाति संघ, गुजरात में क्षत्रिय महासंघ, बिहार में कायस्थ सभा आदि राजनीतिक मामलों में रुचि लेने लगते हैं और अपने संगठित बल के आधार पर हर सम्भव सीमा तक राजनीतिक सौदेबाजी करते हैं।

6. जाति के आधार पर स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था (Provision of Reservation of Seats on the basis of Caste)- भारत की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अनुसूचित जातियों और अनुसूचित कबीलों से सम्बन्धित हैं। इन जातियों के लोग शताब्दियों तक सामाजिक अपमान और सामाजिक भेदभाव के शिकार होते रहे हैं। इसलिए यह अनिवार्य था कि जनसंख्या के इस भाग को अन्य लोगों के समान उठाने के योग्य बनाने के लिए इनको कुछ विशेष सुविधाएं दी जाएं। इसी कारण संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जन जातियों के लोगों के लिए भारतीय शासन व्यवस्था में विशेष सुविधाएं दी गई हैं। विधानमण्डली, सरकारी सेवाओं, शिक्षण संस्थाओं आदि में इन जातियों के लोगों के लिए कुछ स्थान आरक्षित रखे गए हैं। संसद् द्वारा यह अवधि बढ़ाकर 2030 तक निश्चित कर दी गई है। स्थानीय निकायों में भी इनकी जनसंख्या के अनुपात में इन वर्गों के लिए स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। जाति के आधार पर आरक्षित स्थान रखने की संवैधानिक व्यवस्था ने भारतीय राजनीति का जातिकरण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अभिनीत की है। जब कभी भी कोई राजनीतिक दल अपनी नीतियां या कार्यक्रम निश्चित करता है तो वह अनुसूचित जातियों की भलाई के प्रति विशेष ध्यान देने का वचन देता है।

जाति पर राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव (IMPACT OF POLITY ON CASTE)

उपर्युक्त तथ्य चित्र के एक रूप की अभिव्यक्ति करते हैं। इसके सन्दर्भ में कोई सन्देह नहीं है कि जाति के तथ्य ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को कई पक्षों से प्रभावित किया है। परन्तु इसके विपरीत राजनीतिक व्यवस्था का भी जाति-प्रथा पर गहरा प्रभाव पड़ा है। ऐसे प्रभावों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. जाति-प्रथा के स्वरूप में परिवर्तन (Change in the Nature of Caste System) - भारतीय संविधान द्वारा अस्पृश्यता की समाप्ति की गई है। किसी भी रूप में अस्पृश्यता पर कार्यान्वयन करना या इसका प्रचार करना वैधानिक अपराध है। इन नवीन परिस्थितियों ने जाति-प्रथा के स्वरूप को बदल कर रख दिया है।

2. जातियों के राजनीतिक महत्त्व में वृद्धि (Increase in the Political Importance of Castes) - भारत में संविधान द्वारा राजनीतिक समानता का सिद्धान्त क्रियान्वित किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को एक मत का अधिकार दिया गया है। जाति के आधार पर किसी भी व्यक्ति को राजनीतिक अधिकारों व सरकारी सेवाओं से वंचित नहीं किया जा सकता। हमारे देश में संयुक्त चुनाव प्रणाली क्रियान्वित की गई है। चुनाव लड़ने वाले प्रत्येक विधायक को सभी मतदाताओं से मत की 'भिक्षा' मांगनी पड़ती है। इन सभी बातों ने कथित जातियों के लोगों की राजनीतिक महत्ता में वृद्धि की है।

3. राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि (Increase in the Political Participation) - जाति के तथ्य ने लोगों की राजनीतिक सहभागिता में पर्याप्त वृद्धि की है। लोग जातीय-भावना से प्रेरित होकर अपने मताधिकार का उपयोग अवश्य करते हैं। लोगों को इस बात का अनुभव हो गया है कि राजनीतिक शक्ति का सन्तुलन उनके हाथों में है। जिस राजनीतिक दल को जातियों के लोगों का समर्थन प्राप्त होगा वह राजनीतिक दल, राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करने में अवश्य ही सफल होगा। जहां से अनुसूचित जातियों के प्रत्याशी चुनाव लड़ते हैं उन चुनाव क्षेत्रों में प्रायः भारी मतदान होता है।

4. जातीय विशिष्ट वर्ग का विकास (Emergence of Caste Elites) - राजनीतिक व्यवस्था ने अनुसूचित जातियों के लिए कई विशेष सुविधाओं की व्यवस्था की है। इन विशेष सुविधाओं का लाभ इन जातियों के सभी लोगों तक नहीं पहुंच सका है। इन जातियों के थोड़े से लोगों ने इन सुविधाओं का लाभ उठा कर देश की राजनीति में अपना विशेष स्थान बना लिया है। ये लोग ही जातीय विशिष्ट वर्ग के रूप में उत्कृष्ट हुए हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल इस विशिष्ट वर्ग के नेताओं को अपने साथ जोड़ने का प्रयास करता है। जातीय विशिष्ट वर्ग के विकास ने निम्न जातियों के साधारण लोगों के महत्त्व को घटाया है। राजनीतिक दल इस विशिष्ट वर्ग के लोगों से ही राजनीतिक सौदेबाज़ी कर लेते हैं और विशिष्ट वर्ग के नेता साधारण लोगों को अपने पीछे लगाने का प्रयास करते हैं।

4. मध्यम एवं निम्न जातियों की सामाजिक-आर्थिक दशा में सुधार (Improvement in Socio-economic Conditions of Middle and Lower Castes) - सरकार द्वारा अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों को सरकारी सेवाओं में आरक्षण दिए जाने, और इनके बच्चों के लिए शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश में आरक्षण व्यवस्था लागू किए जाने से इन जातियों की सामाजिक-आर्थिक दशा में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। मनरेगा जैसी योजनाओं के लागू करने से निम्न जातियों के निर्धन लोगों को रोजगार उपलब्ध हुआ है,।

भारतीय राजनीति में भाषा

यद्यपि भारत में मातृ-भाषाओं की गिनती बहुत अधिक है, परन्तु भारतीय संविधान की **आठवीं अनुसूची** (Eighth Schedule) में 22 भारतीय भाषाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 अधीन हिन्दी की देवनागरी लिपि केन्द्र की सरकारी भाषा घोषित की गई है,

भाषा के सम्बन्ध में संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provisions regarding Language)

भारतीय संविधान के 17वें भाग में भाषा के विषय में निम्नलिखित व्यवस्था की गयी है-

1. देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी, संघ की सरकारी भाषा होगी।

2. संविधान लागू होने की तिथि से लेकर 15 वर्ष तक अंग्रेजी भाषा का प्रयोग केन्द्र सरकार के कार्यों में यथावत् जारी रहेगा। इस अवधि के दौरान भी राष्ट्रपति हिन्दी के साथ-साथ प्रयोग किए जाने का आदेश दे सकते हैं।

3. इन 15 वर्षों के बीतने के बाद भी, संसद किन्हीं विशिष्ट प्रयोजनों हेतु अंग्रेजी का प्रयोग जारी रखने की स्वीकृति प्रदान कर सकती है।

4. संविधान लागू किए जाने के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक भाषा आयोग की स्थापना करेगा, जो हिन्दी के प्रयोग में क्रमिक वृद्धि, अंग्रेजी के प्रयोग में उत्तरोत्तर कमी और ऐसे ही अन्य प्रश्नों पर संस्तुति प्रदान करेगा। इसके प्रत्येक 10 वर्ष बाद राष्ट्रपति द्वारा भाषा आयोग की स्थापना की जा सकती है।

5. भाषा आयोग की सिफारिशों पर विचार करने हेतु एक संसदीय समिति की स्थापना की जाएगी। यह समिति समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर गठित होगी। इसमें लोक सभा के 20 और राज्य सभा के 10 सदस्य शामिल होंगे। यह समिति भाषा

आयोग की सिफारिशों के विषय में राष्ट्रपति को रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

6. राज्यों के मध्य और केन्द्र एवं राज्यों के मध्य संचार की भाषा अंग्रेजी होगी, लेकिन यदि दो या दो से अधिक राज्य सहमत हों, तो वे संचार की भाषा के रूप में हिन्दी को अपना सकते हैं।

7. जब तक संसद कानून बनाकर कोई अन्य व्यवस्था नहीं करती, तब तक सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की कार्यवाहियाँ अंग्रेजी भाषा में होंगी। लेकिन राष्ट्रपति की पूर्व-स्वीकृति से राज्यपाल उच्च न्यायालय की कार्यवाही राज्य की राजभाषा में करने की अनुमति दे सकता है, किन्तु तब भी उच्च न्यायालय के निर्णय, डिक्री या आदेश अंग्रेजी भाषा में ही होंगे।

8. राज्य विधानमण्डल के विधेयकों, अधिनियमों, आदेशों एवं अध्यादेशों का पाठ (Text) अंग्रेजी भाषा में होगा, लेकिन यदि कोई राज्य विधानमण्डल विधेयकों, अधिनियमों, नियमों एवं आदेशों के लिए अंग्रेजी की जगह कोई अन्य भाषा तय करता है, तो उसका अंग्रेजी भाषा में राज्यपाल द्वारा कराया गया अधिकृत अनुवाद ही अधिकृत पाठ माना जाएगा।

9. व्यक्ति को संघ अथवा राज्य के किसी अधिकारी के समक्ष, अपनी शिकायतों को दूर करने के लिए संघ अथवा राज्य में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा में आवेदन-पत्र देने का अधिकार होगा।

भारतीय राजनीति में भाषावाद (Linguism in Indian Politics)। या

भारतीय राजनीति में भाषावाद के प्रभाव

भाषावाद ने किन-किन रूपों में स्वयं को राजनीति के मंच पर अभिव्यक्त किया है, इसकी चर्चा निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है।

1. भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन (Reorganisation of States on Linguistic Basis) - भारत में क्षेत्रीय दलों एवं नेताओं द्वारा भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग समय-समय पर उठायी जाती रही है। यह माँग स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद उठायी जाने लगी थी। सर्वप्रथम 1952 में तत्कालीन मद्रास राज्य की तेलुगू भाषी जनता द्वारा पृथक राज्य की स्थापना के लिए प्रबल आन्दोलन छेड़ा गया। यहाँ तक कि प्रसिद्ध गांधीवादी नेता पोट्टी श्रीरामुलु इस माँग को मनवाने के लिए आमरण अनशन पर बैठ गए, जिनकी मृत्यु के बाद हुए हंगामे के कारण सरकार को पृथक राज्य की स्थापना की माँग माननी पड़ी और इस प्रकार 1953 में 'आंध्र प्रदेश' नामक एक नया राज्य अस्तित्व में आया। आंध्र प्रदेश की स्थापना के बाद भाषायी आधार पर पृथक राज्यों की स्थापना की माँग ने इतना जोर पकड़ा कि सरकार को सितम्बर, 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग नियुक्त करना पड़ा। इस आयोग की सिफारिशों के आधार पर 1956 में राज्यों का पुनर्गठन किया गया, जिसके फलस्वरूप 14 राज्य और छः संघीय क्षेत्र (Union Territories) अस्तित्व में आए। किन्तु इसके बाद भी भाषा के प्रश्न को लेकर नए राज्यों की स्थापना की माँग की जाती रही। 1960 में इसी माँग के आधार पर तत्कालीन बम्बई राज्य को महाराष्ट्र एवं गुजरात नामक राज्यों में विभक्त किया गया। इसी प्रकार शिरोमणि अकाली दल की 'पंजाबी सूबे' की स्थापना की माँग को स्वीकार करते हुए 1 नवम्बर, 1966 को तत्कालीन पंजाब राज्य को पंजाब एवं हरियाणा राज्यों में विभक्त किया गया।

2. राज्यों के मध्य भाषायी विवाद (Language-related Disputes among States)- भारत में भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने के बाद अनेक राज्यों के बीच भाषा को लेकर सीमा-विवाद उठ खड़े हुए अर्थात् भाषायी आधार पर किसी क्षेत्र विशेष को लेकर पड़ोसी राज्यों द्वारा दावे प्रति दावे प्रस्तुत किए जाने लगे। पंजाब एवं हरियाणा के मध्य राजधानी चण्डीगढ़, अबोहर फाजिल्का एवं अनेक सीमावर्ती क्षेत्रों को लेकर विवाद जारी है। इसी प्रकार का विवाद महाराष्ट्र एवं कर्नाटक की सीमा पर स्थिति बेलगाम एवं अन्य क्षेत्रों को लेकर बना हुआ है। 3. उत्तरी एवं दक्षिणी भावनाओं का जन्म (Origin of Northern and Southern Feelings)- भारत में भाषायी आधार पर उत्तरी एवं दक्षिणी भावनाओं का जन्म हुआ है। दक्षिणी भारत के चार राज्यों-विशेषकर तमिल नाडु ने हिन्दी का प्रबल विरोध किया है। दक्षिणी

राज्यों में 'हिन्दी साम्राज्य' के विरुद्ध जबरदस्त आन्दोलन चलाए गए हैं। इसको प्रतिक्रियास्वरूप हिन्दी के समर्थक राज्यों ने भी हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में लागू किए जाने के पक्ष में अपनी आवाजे बुलन्द की हैं। स्पष्ट है कि भाषायी मुद्दे पर भारत में उत्तरी एवं दक्षिणी भावनाओं का जन्म हुआ है।

3. कुछ भाषाओं की मान्यता का प्रश्न (Question of Recognition of Some Languages) - भाषाओं को संवैधानिक मान्यता दिए जाने के प्रश्न को लेकर भी भारत में आन्दोलन किए जाते रहे हैं। आरम्भ में संविधान की आठवी अनुसूची में 14 प्रमुख भाषाओं को शामिल किया गया था। आगे चलकर कुछ अन्य भाषाओं को इस अनुसूची में सम्मिलित करने की माँगें की गयीं। सरकार ने कुछ क्षेत्रीय भाषाओं के विषय में इस माँग को स्वीकार भी किया। उदाहरण के लिए 1967 में सिन्धी भाषा को 15वीं भाषा के रूप में इस अनुसूची में सम्मिलित किया गया। इसी प्रकार 1992 में मणिपुरी, कोंकणी एवं नेपाली को आठवीं अनुसूची में सम्मिलित किया गया। इसी प्रकार 2003 में बोड़ों, मैथिली, डोगरी, एवं संथालो भाषाओं को इस अनुसूची में जोड़ा गया, अतः आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं की संख्या बढ़कर 22 हो गयी। इस पर भी राजस्थानी, वृज एवं छत्तीसगढ़ी भाषाओं को सवैधानिक मान्यता दिलाने के लिए प्रयास जारी हैं। वस्तुतः भारत में क्षेत्रीय भाषाएँ नवीन राज्यों के गठन की माँग का आधार बन जाती हैं।

4. भाषायी मुद्दों पर राजनीतिक हलचल (Political Activities on Linguistic Issues)- भाषायी मुद्दों को लेकर भारतीय राजनीति में काफी हलचल होती रही है। यहाँ तक कि भाषायी आधार पर केन्द्रीय मंत्रिमंडल में भी विरोध के स्वर उभरे हैं और मन्त्रियों के त्याग-पत्र देने तक की नौबत भी आयी है। उदाहरण के लिए 1950 में केन्द्रीय वित्त मंत्री सी.डी. देशमुख ने भाषायी मुद्दे पर केन्द्रीय मंत्रिमंडल से अपना त्यागपत्र दे दिया था। इसी प्रकार एम.सी. छागला ने भी सरकार की भाषायी नीति का विरोध करने के लिए मंत्रिमंडल से अपना त्यागपत्र दिया था।

5. भाषायी आधार पर दबाव समूहों का उदय (Rise of Pressure Groups on Linguistic Basis) - भाषायी मुद्दे ने भारतीय राजनीति में नवीन दबाव गुटों को जन्म दिया है। उदाहरण के लिए भाषायी आधार पर महाराष्ट्रवासियों एवं गुजरातियों ने क्रमशः 'संयुक्त महाराष्ट्र समिति' एवं 'महागुजरात जनता परिषद' नामक संगठनों का गठन किया था. जिन्होंने आगे चलकर राजनीतिक दलों का स्थान ले लिया था। इन संगठनों में शुरू में वामपंथी लोग शामिल थे, लेकिन जल्दी ही इन्हें गैर-राजनीतिक लोगों का समर्थन प्राप्त हो गया था।

6. भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्या (Problem of Linguistic Minorities)-1956 में राज्यों का पुनर्गठन किए जाने के बाद भी भारत के अनेक राज्यों में भाषायी अल्पसंख्यक विभिन्न प्रकार के संरक्षणों की माँग कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश एवं बिहार में उर्दू भाषा-भाषियों का प्रश्न, कर्नाटक में मराठी भाषा-भाषियों का प्रश्न और पंजाब में कथित हिन्दी भाषा-भाषियों का प्रश्न भाषायी अल्पसंख्यकों की समस्या को अभिव्यक्त करता है। कर्नाटक में रहने वाले मलयालम एवं तमिल भाषी लोग स्वयं को असुरक्षित अनुभव करने लगे हैं। कन्नड़ भाषी लोगों का गुस्सा 1982 के हिंसक आन्दोलन में ज्वालामुखी की तरह फट पड़ा था।

7. भाषा-सम्बन्धी राजनीतिक आन्दोलन (Language-related Political Movements)- सरकार की भाषा विषयक नीतियों से उत्पन्न रोष ने देश में राजनीतिक आन्दोलनों को जन्म दिया है। 1960 के दशक के मध्य में उत्तरी राज्यों-उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में अंग्रेजी के विरोध में जबरदस्त आन्दोलन हुए थे। इन आन्दोलनों में मुख्य रूप से छात्रों ने भाग लिया था और इन्होंने अराजक एवं हिंसक साधनों का सहारा लिया था। इसके बाद 1967 में मद्रास राज्य में छात्रों ने हिन्दी के विरोध में आन्दोलन किए थे। शीघ्र ही ये आन्दोलन आंध्र प्रदेश एवं मैसूर तक फैल गए थे।

8. क्षेत्रवाद की भावना का जन्म (Origin of the Feeling of Regionalism) - भारत में भाषावाद ने क्षेत्रवाद की भावना को प्रोत्साहन दिया है। इसी कारण यहाँ 'धरती के पुत्र' (Sons of the Soil) की नीति अपनायी गयी अर्थात् केवल उन्हीं लोगों को सरकारी एवं गैर-सरकारी पदों पर नियुक्तियाँ दी जाने का प्रयत्न किया गया, जो स्थानीय भाषा बोलने वाले हों। महाराष्ट्र में शिव सेना ने केरल एवं कर्नाटक के व्यक्तियों को केवल इसलिए परेशान किया, क्योंकि वे भिन्न भाषा-भाषी थे।

आरक्षण की राजनीति (POLITICS OF RESERVATION)

भारतीय समाज में कमजोर एवं पिछड़े वर्गों के विकास को विश्वसनीय बनाने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों आदि के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। आरक्षण सम्बन्धी संवैधानिक व्यवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

1. विधानमण्डलों में आरक्षण (Reservation in Legislatures) — संविधान के अनुच्छेद 330 में यह व्यवस्था है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए लोकसभा (House of People) में स्थान आरक्षित रखे जाएंगे। प्रत्येक राज्य में इन वर्गों के लिए आरक्षित स्थान की संख्या इन वर्गों के सम्बन्धित राज्य में जनसंख्या के अनुपात से निश्चित की जाएगी। संविधान के अनुच्छेद 332 में यह व्यवस्था है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए राज्यों की विधानसभाओं में भी स्थान आरक्षित रखना आवश्यक है। प्रत्येक राज्य की विधानसभा में इन वर्गों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या, उस राज्य में इन वर्गों की अपनी अपनी जनसंख्या और उस राज्य की कुल जनसंख्या के अनुपात से निश्चित की जाएगी। यहां यह वर्णनीय है कि राज्य सभा (Council of States) और विधान परिषदों (Legislative Councils) में इन वर्गों के लिये स्थान आरक्षित रखने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। संविधान के अनुसार अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए लोकसभा और राज्य सभा तवा विधानसभाओं में स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था संविधान के लागू होने से 10 वर्ष तक लागू रहनी थी, परन्तु आरक्षण की इस व्यवस्था को दस दस वर्षों के पश्चात् बढ़ाया गया। अक्तूबर, 2009 में एक अधिनियम पारित करके इस व्यवस्था को आगामी दस वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया। अब यह व्यवस्था 2030 तक लागू रहेगी।

2. स्थानीय संस्थाओं में आरक्षण (Reservation in Local Bodies)— दिसम्बर, 1992 में संसद् द्वारा पास किए गए 73वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा पंचायती राज की संस्थाओं में अनुसूचित जाति और जनजातियों और स्त्रियों के लिए स्थान आरक्षित रखने की संवैधानिक व्यवस्था की गई है। इस संवैधानिक संशोधन के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं के अध्यक्षों के कुछ पद इन वर्गों के लिए आरक्षित रखे गए हैं। इसी तरह दिसम्बर, 1992 में संसद् द्वारा पास किए गए 74वें संवैधानिक संशोधन द्वारा शहरी स्थानीय संस्थाओं में भी अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा स्त्रियों के लिए स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्या की गई है।

3. नौकरियों में आरक्षण (Reservation in Services)- संविधान के अनुच्छेद 16 की धारा 4 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गई है कि किसी ऐसी पिछड़ी श्रेणी के लिए राज्य नौकरियों में आरक्षण रख सकता है जिस वर्ग को सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त न हुआ हो। संविधान की यह व्यवस्था सरकार की किसी भी पिछड़ी हुई श्रेणी के लिए सरकारी सेवाओं स्थान में आरक्षित रखने की शक्ति देती है। पिछड़े वर्ग में अनुसूचित जाति, जनजाति तथा समाज के अन्य पिछड़े वर्ग शामिल हैं। अनुच्छेद 16 धारा 4-A के अन्तर्गत सरकार ऐसी अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए सरकारी सेवाओं में पदोन्नति (Promotion) के सम्बन्ध में भी स्थान आरक्षित रख सकती है जो अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त न कर सकती हो। संविधान के अनुच्छेद 335 में यह व्यवस्था की गई है कि प्रशासन की योग्यता को कायम रखते हुए केन्द्र और राज्य सरकारों की सेवाओं के पकों पर नियुक्तियां करते समय अनुसूचित जातियों व जनजातियों के विशेष दावों को ध्यान में रखा जाएगा इस तरह स्पष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 16 धारा 4 और संविधान के अनुच्छेद 335 केन्द्र व राज्य सरकारों की सेवाओं में अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था करते है। वर्तमान समय में 15 प्रतिशत पद अनुसूचित जातियों के लिए तथा 7.5% पद अनुसूचित जन जातियों के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। इनके अतिरिक्त मण्डल आयोग की सिफारिशों के अनुसार सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्रों के 27% पद अन्य पिछड़े वर्गों (Other Backward Classes) के लिए आरक्षित रखे जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार कुल उपलब्ध वर्गों में से 50% से अधिक पद आरक्षित नहीं रखे जा सकते हैं।

निजी शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण (Reservation in Private Educational Institutions)-21 दिसम्बर, 2005 को लोकसभा ने और 22 दिसम्बर, 2005 को राज्यसभा ने संविधान का 104वां संशोधन पास किया या और इस संशोधन को 2

फरवरी, 2006 को राष्ट्रपति डॉ० ए०पी० जे० अब्दुल कलाम ने अपनी स्वीकृति दे दी थी। इस संशोधन द्वारा संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि सरकार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के अतिरिक्त सामाजिक और शैक्षणिक तौर से पिछड़े वर्गों के लिए निजी शिक्षण संस्थाओं में स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था कर सकती है। इस संवैधानिक संशोधन ने यह स्पष्ट किया है कि सरकार से सहायता प्राप्त करने वाली और गैर-सहायता प्राप्त करने वाली निजी शिक्षण संस्थाओं में स्थान आरक्षित रखे जा सकते हैं। इस संवैधानिक संशोधन के पास होने से पूर्व निजी शिक्षण संस्थाओं में स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था नहीं थी। इस संवैधानिक संशोधन के फलस्वरूप सरकारी शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त निजी शिक्षण संस्थाओं में भी स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है। यहाँ यह वर्णन योग्य है कि निजी शिक्षण संस्थाओं में वह संस्थाएं शामिल नहीं हैं जो अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित की जा रही हैं। दूसरे शब्दों में, सरकार अल्पसंख्यकों द्वारा चलाई जा रही संस्थाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूजित जनजातियों और सामाजिक व शैक्षणिक तौर पर पिछड़े वर्गों के लिए स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था नहीं कर सकती है। सरकार द्वारा पारित इस संशोधन विधेयक पर 27 मार्च, 2007 को सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ आपत्तियां प्रकट करते हुए रोक लगा दी थी, परन्तु 10 अप्रैल, 2008 को सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य पिछड़े वर्गों (OBC's) को उच्च शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण देने सम्बन्धी विधेयक को वैध ठहराते हुए इस वर्ग को इन संस्थाओं में आरक्षण देने के आदेश जारी किए थे। इस आरक्षण के लाभ से 'समृद्ध वर्ग' (Creamy Layer Class) को वंचित रखा गया था।

4. आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण (Reservation for Economically Weaker Sections) - केंद्र सरकार ने 17वीं लोक सभा के चुनावों के मद्देनजर संविधान में 103वां संशोधन कर डाला, जिसके तहत अनारक्षित वर्गों में शामिल 'आर्थिक रूप पिछड़े वर्गों' (EWSs) के लिए सरकारी नौकरियों में भर्ती और शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए 10 प्रतिशत सीटें आरक्षित कर दी गयीं। इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी। सर्वोच्च न्यायालय ने 7 नवंबर, 2022 को 3-2 के बहुमत से दिए अपने निर्णय में 103वें संशोधन अधिनियम (2019) की पुष्टि की।

इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने सकारात्मक कार्रवाई (Affirmative Action) का विस्तार करते हुए अगड़ी जातियों के उन आर्थिक रूप में कमजोर लोगों को भी आरक्षण का लाभ देने का समर्थन किया, जो अभी तक आरक्षण के लाभ से वंचित थे। सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों से संबंध रखने वाले गैर-सम्पन्न (Non-creamy Layer) लोगों को 10 प्रतिशत आरक्षण से बाहर रखना पक्षपातपूर्ण (Discriminatory) है और यह संशोधन इंदिरा साहनी मुकदमें (1992) में तय की गयी आरक्षण की 50 प्रतिशत की सीमा का उल्लंघन करता है।

आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में तर्क (ARGUMENTS FOR AND AGAINST RESERVATION)

स्वतन्त्र भारत में अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए लागू आरक्षण की नीति के विषय में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हो गए हैं। इन नीति सम्बन्धी भारतीयों में साधारणतः सहमति नहीं है। लोगों का बहुमत आरक्षण के पक्ष में है। जबकि ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जोकि आरक्षण की नीति का विरोध करते हैं।

आरक्षण की नीति के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं-

1. असमानताओं को समाप्त करने के लिए आवश्यक (Essential for the Removal of all Inequalities)-सदियों से भारतीय समाज के लोगों का बहुमत कथित उच्च वर्गों के लोगों के अमानवीय व्यवहार और अत्याचार का शिकार रहा है। इसलिए दलितों और पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए विशेष व्यवस्था की जानी आवश्यक है। इन विशेष सुविधाओं का मुख्य उद्देश्य दलितों को दूसरे वर्ग के लोगों के समान उठने के योग्य बनाना है। भारतीय समाज में अब भी सामाजिक और आर्थिक असमानताओं का अस्तित्व व्यापक स्तर पर पाया जाता है। जब तक ऐसी असमानताएं निश्चित स्तर पर नहीं आ जातीं तब तक दलितों के लिए आरक्षण की नीति को जारी रखना बहुत आवश्यक है।

2. प्रस्तावना में अंकित आदर्शों की प्राप्ति के लिए सहायक (Helpful to achieve the ideals enshrined in the

Preamble)- भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय के अतिरिक्त भाषण देने और विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता, विश्वास और पूजा की स्वतन्त्रता, पद और अवसर की समानता देने और उन सभी में भाई-चारे की भावना तथा व्यक्तित्व गौरव विकसित करने का भारतीय लोगों का संकल्प अंकित किया गया है। यदि दलित वर्गों के लिए संरक्षित भेदभाव (Protective Discrimination) की व्यवस्था को खत्म कर दिया जाता है। प्रस्तावना में अंकित आदेशों की प्राप्ति असम्भव बन जाएगी। आरक्षण की नीति ने दलित वर्गों के काफी अधिकार लोगों को शैक्षणिक संस्थाओं, सार्वजनिक उद्यमों, तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्रों, पेशेवर संस्थाओं और सरकारी सेवाओं में प्रवेश करने के लिए प्रेरित किया है।

3. दलित स्त्रियों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक (Essential for the allround development of Dalit Women)- आरक्षण की नीति के परिणामस्वरूप ही दलित वर्गों की स्त्रियों ने सामाजिक तौर पर काफ़ी अधिक विकास किया है और आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी भारी बहुमत से प्रवेश किया है। यदि आरक्षण की नीति लागू न की जाती तो दलित वर्गों की स्त्रियों के लिए आधुनिक वैज्ञानिक युग में अन्य वर्गों की स्त्रियों के समान विकास करना असम्भव ही होना था। 73वें संवैधानिक संशोधन ने पंचायती राज की संस्थाओं में, 74वें संवैधानिक संशोधन ने शहरी क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं में अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए स्थान आरक्षित रखने की व्यवस्था करके दलित स्त्रियों को पुरुषों के समान स्थानीय स्वशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के योग्य बनाया है। भारत में कुछ समय से केन्द्रीय संसद् और राज्य विधानमण्डलों में स्त्रियों के लिए 33% स्थान आरक्षित रखने के विषय में बहस चल रही है। इस विषय के सम्बन्ध में कई बार संसद् के अधिवेशनों में यह बिल 1998 में पेश करने के यल किए गए थे, परन्तु कुछ दलों के विरोध के कारण यह बिल लोकसभा में पेश नहीं किया जा सका था। उस बिल का विरोध करने वाले अधिकांश राजनीतिक दल यह मांग करते हैं कि स्त्रियों के लिए आरक्षित रखे जाने वाले 33% स्थानों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों की स्त्रियों के लिए भी स्थान रखने की विशेष व्यवस्था की जाए।

4. समाज के वंचित वर्गों के मानसिक विकास के लिए आवश्यक (Essential for the mental Development of the Deprived Sections of Society)- आरक्षण की नीति उन वर्गों के लोगों के पक्ष में ग्रहण की गई है जिन्हें कि उनके योग्य मानवीय अधिकारों से उच्च वर्गों के लोगों ने ही वंचित किया था। काफ़ी लम्बे समय तक अमानवीय व्यवहार और अत्याचार का शिकार होने के कारण वंचित वर्गों के लोगों में हीनता की भावना का विकास होना बिल्कुल स्वाभाविक था। आरक्षण की नीति ने बहुत अधिक दलितों की मानसिकता में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया है और उस परिवर्तन के फलस्वरूप ही इन वर्गों के लोग हीनता की भावना से मुक्त हो रहे हैं। दलितों की स्थिति ऐसी है कि वह अपने बल से उन वर्गों के लोगों का सामना नहीं कर सकते हैं जिन वर्गों के लोगों ने उन्हें अपने अत्याचारी व्यवहार का शिकार बनाया था। सरकारी और सामाजिक स्तर पर विशेष व्यवस्था समाज के वंचित वर्गों के लोगों के मानसिक विकास को विश्वसनीय बना सकती है। आरक्षण की नीति भी एक ऐसा ही साधन है जो दलितों की सोच में रचनात्मक परिवर्तन लाने और उनके मानसिक विकास को विश्वसनीय बनाने के लिए आवश्यक अवस्थाएं विकसित कर सकती है।

5. सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का साधन (Instrument of Socio-Economic Transformation)-आरक्षण की नीति भारतीय समाज में सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध हुई है। इस व्यावहारिक सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि दलितों के भारी बहुमत ने सरकारी सेवाओं, राजनीतिक क्षेत्र और आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश किया है। उनके जीवन स्तर में महान परिवर्तन हुआ है और इन वर्गों के लोगों को व्यापारिक क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। वर्तमान परिस्थितियों में पिछड़े वर्गों के लोगों से खुले रूप में भेदभाव करना अथवा उन्हें उनके अधिकारों से वंचित करना अथवा उनके साथ किसी भी रूप में दुर्व्यवहार करना सम्भव नहीं रहा है। वर्तमान समाज में कथित दलित वर्गों के लोग उच्च सरकारी पदों पर विराजमान हैं और कथित उच्च वर्गों के लोग उनके अधीन काम करते हैं। सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की क्रान्ति को सम्पूर्ण करने के लिए नीति को जारी रखना उचित लगता है।

6. राजनीतिक लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक (Essential for the Success of Political Democracy)- राजनीतिक लोकतन्त्र का मूल आधार समानता का सिद्धान्त है परन्तु किसी समाज में सभी नागरिकों को केवल राजनीतिक अधिकार समान रूप से प्रदान करने से राजनीतिक लोकतन्त्र की सफलता तो विश्वसनीय नहीं हो सकती है। राजनीतिक

लोकतन्त्र की सफलता के लिए सामाजिक और आर्थिक समानता का अस्तित्व भी आवश्यक है। सामाजिक और आर्थिक समानता के बिना राजनीतिक लोकतन्त्र केवल दिखावा ही सिद्ध होता है और वास्तव में वह लोकतन्त्र नहीं होता है। आरक्षण की नीति का मुख्य उद्देश्य ही दलितों को अन्य वर्गों के लोगों के समान होने के योग्य बनाना है। आरक्षण की नीति द्वारा ही पिछड़े लोगों की राष्ट्रीय मुख्य धारा में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। आरक्षण की नीति के फलस्वरूप ही दलितों ने राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश किया है। इस नीति के द्वारा ही भारतीय समाज में पाई जाने वाली गम्भीर सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को घटाने का सफल यत्न किया गया है। ऐसी असमानताओं के कम होने पर ही भारत का राजनीतिक लोकतन्त्र सफलता के मार्ग पर चलने के योग्य हो सकता है।

आरक्षण के विरुद्ध तर्क (ARGUMENTS AGAINST RESERVATION)

आरक्षण के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क प्रायः दिए जाते हैं-

1. निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति करने में असफल (Failed to achieve the desired Objects) — जिन उद्देश्यों को मुख्य रखकर संविधान निर्माताओं ने आरक्षण सम्बन्धी संवैधानिक व्यवस्था की थी, उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकी है। यह ठीक है कि दलितों के जीवन स्तर में काफ़ी परिवर्तन आया है और उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक प्रवेश भी किया है परन्तु उन दलितों की संख्या बहुत कम है जिन्होंने आरक्षण की नीति और विशेष सुविधा की व्यवस्था का लाभ हुआ है। अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के लोगों तक इन सुविधाओं का लाभ नहीं पहुंचा है। पिछड़े वर्गों के लोगों का भारी बहुमत अब भी अशिक्षा, अज्ञानता, अमानवीय व्यवहार, भेदभाव पूर्ण अत्याचार और सामाजिक अन्याय का शिकार है । आलोचकों का यह मत है कि इस नीति ने पिछड़े वर्गों के मुट्ठी भर लोगों को लाभ पहुंचाया है और सामान्य दलितों को इस नीति का कोई लाभ नहीं पहुंचा है। जिन उद्देश्यों के लिए आरक्षण की नीति ग्रहण की गई थी, उन उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकी है। इसीलिए इस नीति को जारी रखने की अपेक्षा इस पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है।

2. जाति पर आधारित विशिष्ट वर्ग का जन्म (Emergence of caste based Elites)- आरक्षण की नीति का मूल आधार जाति है। कुछ जातियों के लोगों ने आरक्षण की नीति का पूर्ण लाभ उठाया है। आरक्षण सम्बन्धी व्यावहारिक सत्य यह है कि इस नीति का लाभ कुछ खानदानों के परिवारों को ही हुआ है। एक सर्वेक्षण के अनुसार उच्च सरकारी पदों पर आसीन 30% दलित एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्बन्धी है। जाति पर आधारित विशिष्ट वर्ग का जन्म दलितों में भी वर्ग विभाजन का कारण बन रहा है। इसीलिए कई दलित जातियां यह मांग कर रही हैं कि आरक्षण की नीति के अन्तर्गत उन्हें अधिक सुविधा दी जाए क्योंकि अब तक थोड़ी-सी जातियों के ही बहुत अधिक लोगों ने लाभ उठाया है, परन्तु इस नीति का लाभ प्राप्त नहीं कर सकी हैं।

3. सामाजिक तनाव का कारण (Cause of Social Tension) - आरक्षण की नीति सामाजिक तनाव को विकसित करने के लिए काफ़ी सीमा तक उत्तरदायी है। गैर अनुसूचित जातियों के लोग अनुसूचित जातियों के उन लोगों से ईर्ष्या करते हैं। जिन्हें उच्च सरकारी पद योग्यता पर आधारित होने के कारण नहीं अपितु अनुसूचित जाति से सम्बन्धित होने के कारण मिले जब गैर अनुसूचित वर्गों के लोगों के बच्चों को शैक्षणिक व्यावसायिक संस्थाओं में उच्च कोटि के होने के बावजूद भी प्रवेश नहीं मिलता है और नाममात्र योग्यता वाले बच्चों को उन संस्थाओं में दाखिला मिल जाता है तो उनके मन में आरक्षण की नीति के विरुद्ध मनोवैज्ञानिक तूफान उठता है। जब अगस्त 1990 में मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू करने के विषय में प्रधानमन्त्री वी० पी० सिंह ने घोषणा की थी उससे समुचित देश में उसके विरुद्ध जोरदार आन्दोलन आरम्भ हो गया था। पिछड़े वर्गों के पक्ष में सरकारी सेवाओं में 27% स्थान आरक्षित रखने को सरकारी नीति का गैर-अनुसूचित वर्गों के युवकों ने जोरदार विरोध किया था। देश के कई भागों में हिंसक घटनाएं भी हुई थी और कुछ युवकों ने आरक्षण की नीति के विरुद्ध अपना रोष प्रकट करते हुए आत्म-दाह भी किया था। इससे पूर्व गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और अन्य राज्यों में भी युवकों ने आरक्षण के विरुद्ध आन्दोलन चलाए थे।

4. हीनता की भावना पैदा करने के लिए उत्तरदायी (Responsbile for the creation of Inferiority Complex)- आरक्षण की नीति दलित वर्गों के लोगों में हीनता की भावना विकसित करती है। ऐसी भावना उनके मानसिक विकास में भी

रुकावट बनती है। आरक्षण के कारण आरक्षित वर्ग और अनारक्षित वर्ग के बीच दूरी बढ़ी है, जिससे दलित वर्गों में हीनता का विकास हुआ है।

5. राजनीति का जातिकरण (Castecisation of Politics)- आरक्षण की नीति कुछ सीमा तक भारतीय राजनीतिक का जातीयकरण करने के लिए भी उत्तरदायी है। प्रत्येक राजनीतिक दल दलित वर्गों के लोगों को अपना वोट बैंक बनाने का इच्छुक है। इसीलिए प्रत्येक राजनीतिक दल आरक्षण की नीति को कायम रखने का समर्थन करता है। कोई भी दल इस नीति के दोषों को दूर करने के लिए पहल करने को तैयार नहीं है। उसे यह भय है कि ऐसा करने से अनुसूचित जातियों और जनजातियों का एक विशेष केन्द्र (Cell) जो स्थापित हुआ है, वह उनसे दूर भाग जाएगा । कई राजनीतिक दलों का निर्माण ही दलितों के हितों की सुरक्षा और विकास के उद्देश्य से ही हुआ है। बहुजन समाज पार्टी ऐसे राजनीतिक दल का सर्वोत्तम उदाहरण है। आरक्षण की नीति ने सरकारी सेवाओं में भी अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के अधिकारियों और कर्मचारियों के अपने पृथक् व्यावसायिक संगठन बनाने के लिए प्रेरित किया है।

6. अधिक आरक्षण की मांग करना (Incitement to demand for more Reservations)- आरक्षण की नीति का यह निष्कर्ष भी निकला है कि कई वर्गों की तरफ से और आरक्षण की मांग उठ रही है। स्त्रियों की यह मांग है कि विधानमण्डलों में 33% स्थान आरक्षित करने के अतिरिक्त सरकारी सेवाओं में स्त्रियों के लिए स्थान आरक्षित रखे जाने चाहिएं। मुसलमान और कई अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा भी उनके पक्ष में आरक्षण की मांग की जा रही है। दलित ईसाइयों और कई अन्य जातियों की यह मांग है कि उन्हें अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल किया जाए। आरक्षण की नीति के लाभ प्राप्त करने के लिए कई विकसित जातियां भी अपनी राजनीतिक शक्ति की सहायता से अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल होने के लिए सरकार पर दबाव डाल रही है। आरक्षण की वर्तमान नीति अन्य वर्गों द्वारा और आरक्षण की मांग को उत्तेजित करने के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी है।

दलित/पिछड़े वर्गों और आरक्षण का राजनीतिक पर प्रभाव (EFFECTS OF THE POLITICS OF DALITS/BACKWARD CLASSES AND RESERVATIONS)

दलितों अथवा पिछड़े वर्गों और आरक्षण की राजनीति के भारतीय समाज और भारतीय राजनीति पर कई तरह के महत्त्वपूर्ण प्रभाव पाए गए हैं। ऐसे प्रभावों का निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन वर्णन किया जा सकता है-

1. दलितों का सर्वांगीण विकास (Allround Development of Dalits)- समस्त पिछड़े वर्गों को विशेष सुविधाएं देने से दलित वर्गों के काफी अधिक लोगों का सर्वांगीण विकास हुआ है। कोई समय था जब दलितों के साथ अन्य वर्गों के लोग सामाजिक मेल-जोल भी नहीं कर रखते थे और उन्हें पृथक् बस्तियों में रहने के लिए विवश होना पडता था। परन्तु अब दलितों की ऐसी स्थिति बीते समय की कहानी बन कर रह गई है। यह सत्य है कि पिछड़े वर्गों के काफ़ी अधिक लोगों को आरक्षण और विशेष सुविधाओं का लाभ नहीं हुआ है, परन्तु इस व्यावहारिक तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि इन वर्गों के काफ़ी अधिक लोगों ने विशेष सुविधाओं की व्यवस्था से पूरा लाभ उठाया है। वर्तमान समय में जाति आधारित कठोर बन्धन बहुत अधिक कमजोर पड़ा गया है और कथित निम्न जातियों और उच्च जातियों के लोगों में अन्तर्जातीय विवाह होने लग पड़े हैं। यह सब कुछ पिछड़े वर्गों के लिए की गई विशेष सुविधाओं की व्यवस्था और आरक्षण की नीति के फलस्वरूप हुआ है।

2. वर्गीय चेतना का विकास (Development of Class Consciousness) - दलितों की राजनीति ने दलितों में वर्गीय भावना को विकसित किया है। लोकतन्त्रीय प्रणाली ने उन्हें एक तरफ़ अपने अधिकारों के विषय में सचेत करवाया है और दूसरी तरफ उन्हें यह एहसास भी हुआ है कि उच्च जातियों के लोगों ने काफी लम्बे समय तक उनके साथ न केवल दुर्व्यवहार ही किया है, अपितु उनका बहुपक्षीय शोषण भी किया है। दलित राजनीति ने उनके भीतर नवीन चेतना विकसित की है। जिसने उन्हें संगठित होने और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी है। अखिल भारतीय रिपब्लिकन पार्टी और लोक जनशक्ति का निर्माण और प्रत्येक राजनीतिक दल के संगठन में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के विशेष केन्द्रों (Cells) की स्थापना उनकी इस नवीन चेतना के विकास का ही परिणाम है।

3. जाति-आधारित राजनीतिक दलों और दबाव समूहों का निर्माण (Formation of Caste-Based Political Parties and Pressure Groups)- भारत की कुल आबादी का लगभग 30% भाग पिछड़े वर्गों से सम्बन्धित है। इन पिछड़े वर्गों में अनुसूचित जातियां और जनजातियां शामिल हैं। दलित राजनीति ने इन वर्गों के लोगों में इस भावना को जन्म दिया है कि भारतीय समाज के अन्य वर्ग और राजनीतिक दल अपने हितों के विकास और राजनीतिक शक्ति ग्रहण करने के लिए उन्हें साधन के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। अन्य शब्दों में, दलित वर्ग अन्य वर्गों को शासक बनाने की अपेक्षा आप स्वयं शासक बनना चाहते हैं। इस भावना ने उन्हें राजनीतिक दलों के रूप में संगठित होने के लिए प्रेरित किया है। भारतीय राजनीति में बहुजन समाज पार्टी, रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया, लोक जनशक्ति आदि दलों को दलितों की ही पार्टी माना जाता है। इन दलों ने खुले तौर पर अपनी दलित समर्थक नीति की घोषणा की है और शासन शक्ति अपनाने के लिए समूचे दलित वर्ग को प्रेरित करने का यत्न किया है। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ (All India Scheduled Castes Federation) और अन्य इस तरह के कई दबाव समूह भी अस्तित्व में आए हैं।

4. दलितों में विशिष्ट वर्ग का विकास (Emergence of Elites in the Dalits)- पिछड़े वर्गों की राजनीति ने दलितों में भी विशिष्ट वर्ग को जन्म दिया है। आरक्षण की नीति का लाभ उठाते हुए दलित वर्गों के थोड़े से परिवारों ने ही राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक और व्यापारिक क्षेत्रों में प्रवेश किया है। इन वर्गों के लोग ही सरकारी पदों पर आसीन हुए हैं। इन परिवारों में घनिष्ठ सम्बन्ध सामान्य तौर पर मिलते हैं। जिन दलितों ने आरक्षण और अन्य विशेष सुविधाओं का लाभ उठा कर अधिक विकास किया है, वह दलित समूचे पिछड़े वर्ग में विशिष्ट वर्ग का रूप धारण करते जा रहे हैं। इस विशिष्ट वर्ग के लोग आम दलितों से भी सामाजिक मेल-जोल रखने से संकोच करते हैं। यह विशिष्ट वर्ग ऐसी जीवन पद्धति ग्रहण कर रहा है जो इस वर्ग के लोगों को आम दलितों से दूर और उच्च वर्ग के मध्यम वर्ग अथवा उच्च मध्य श्रेणी के लोगों के नजदीक ला रही है। ऐसे विशिष्ट वर्ग के विकसित होने से दलितों में भी वर्गीय अथवा जातीय विभाजन हो रहा है।

5. सामाजिक तनाव का विकास (Emergence of Social Tension)- दलितों की राजनीति ने भारतीय समाज में काफ़ी सीमा तक सामाजिक तनाव भी विकसित किया है। पिछड़े वर्गों के लोगों को दी गई विशेष सुविधाएं अन्य लोगों में विरोधी भावना विकसित करती हैं। ऐसी भावनाएं उस समय अधिक उग्र हो जाती है जब गैर-अनुसूचित जातियों के लोगों को योग्यता के बावजूद भी सरकारी सेवाओं और शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश करने का अवसर नहीं मिलता है

6. दलित वोट बैंक के रूप में (Dalits-as a Vote Bank)- दलितों की राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि दलितों को एक वोट बैंक के रूप में समझा जाता है। कुछ दलित नेताओं का यह विचार गलत नहीं है कि भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलों द्वारा अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों को वोट बैंक के तौर पर प्रयोग किया गया है। कोई भी ऐसा राजनीतिक दल नहीं है जो स्वयं को अनुसूचित जातियों और जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों का मसीहा न बताता हो, परन्तु इनमें से किसी भी कथित मसीहा ने कभी दलितों को जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं उपलब्ध करवाने के विषय में कोई ठोस उपाय नहीं किये हैं। हजारों दलितों के विकास का भाव समस्त दलित वर्ग का विकास नहीं है। आज भी असंख्य दलित उन हालातों में रह रहे हैं जिन हालातों में वह भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व रह रहे थे।

7. मतदान व्यवहार का निर्धारक (Determinant of Voting Behaviour)- पिछड़े वर्गों की राजनीति दलितों के मतदान व्यवहार को भी प्रभावित करती है। राजनीतिक दल भारतीय मतदाताओं की अपनी जाति के प्रति श्रद्धा से पूरी तरह परिचित है। इसलिए चुनावों के समय उनका यह यत्न होता है कि वह किसी विशेष चुनाव क्षेत्र के लिए उस जाति से सम्बन्धित व्यक्ति को ही अपना उम्मीदवार बनाए जिस जाति के लोगों का उस चुनाव क्षेत्र में विशेष प्रभाव है। चुनाव प्रचार के दौरान भी लोगों की जातीय भावनाओं को उत्तेजित किया जाता है और जाति के नाम पर वोटों की मांग की जाती है। न केवल अनुसूचित जातियों के लोग ही अपितु गैर-अनुसूचित वर्गों के मतदाताओं के मतदान व्यवहार को भी जाति का तथ्य अवश्य प्रभावित करता है।

8. अधिक आरक्षण की मांग (Emergence of demand for more Reservations)- दलित राजनीति या आरक्षण की राजनीति ने गैर-अनुसूचित जातियों को भी आरक्षण की मांग करने के लिए उत्तेजित किया है। कई विकसित जातियां अपने राजनीतिक प्रभाव से सरकार पर दबाव डाल रही हैं कि उन्हें भी अनुसूचित जातियों की सूची में शामिल किया जाए। दलित ईसाइयों द्वारा यह मांग काफ़ी लम्बे समय से की जा रही है। स्त्रियों की भी यह मांग है कि सरकारी सेवाओं और विधानमण्डलों

में 33% स्थान उनके लिए आरक्षित रखे जाएं। मुसलमान और कई अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक भी आरक्षण की मांग कर रहे हैं। मण्डल आयोग की सिफारिश के अनुसार अन्य पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी सेवाओं में 27% स्थान आरक्षित रखने के साथ अधिक आरक्षण की मांग और अधिक बलवती हो रही है।

9. आरक्षण को समाप्त करने की मांग (Demand for the End of Reservations)- एक तरफ आरक्षण के लिए मांग बढ़ रही है, परन्तु दूसरी तरफ गैर-अनुसूचित वर्गों के लोगों द्वारा आरक्षण को समाप्त करने की मांग भी जोर पकड़ रही हैं। यह मांग विशेष तौर पर युवकों द्वारा की जा रही है। गैर-अनुसूचित वर्गों के युवा यह महसूस करते हैं कि आरक्षण की नीति के कारण उनका भविष्य उज्जवल नहीं है क्योंकि इस नीति के फलस्वरूप शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त करने और सरकारी सेवाओं में प्रवेश करने के अवसर उनके लिए बहुत सीमित होकर रह गए हैं।

10. राजनीति का जातीयकरण (Castecised of Politics)- दलित राजनीति भारतीय राजनीति के जातीयकरण के लिए कुछ सीमा तक जिम्मेदार है। प्रत्येक राजनीतिक दल भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका के महत्त्व को अनुभव करता है। इसीलिए प्रत्येक राजनीतिक दल अनुसूचित जातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों का हितैषी होने का दावा करते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल ने अपने संगठन में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए विशेष केन्द्र स्थापित किए हैं। आम चुनावों के लिए अपने उम्मीदवारों का चुनाव करते समय भी राजनीतिक दल जाति के तथ्य को विशेष महत्त्व देते हैं। भिन्न-भिन्न जातियों को सन्तुष्ट करने के लिए लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण जाति से सम्बन्धित व्यक्ति को चुनाव टिकट देने का प्रयत्न किया जाता है। चुनावों के समय वोटों को प्राप्त करने के उद्देश्य से मतदाताओं की जातीय भावना को भी उत्तेजित करने के लिए कई तरह के प्रयत्न किए जाते हैं। मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते समय भी शासक दल भिन्न-भिन्न जातियों को मन्त्रिमण्डल में स्थान देने के लिए हर तरह के सम्भव यल करता है। इस कथन में कोई सन्देह नहीं है कि भारत में या तो 'जाति का राजनीतिकरण' अथवा 'राजनीति का जातिकरण' हुआ है तथा यह प्रवृत्ति दिन प्रतिदिन बढ़ रही है।

11. गठवन्धन की राजनीति के लिए उत्साह (Encouragement to Coalition Politics)- भारत में गठबन्धन की राजनीति का युग चल रहा है। इस तरह की राजनीति को विकसित करने में अनेक तथ्यों की देन है। उस तथ्यों में दलित राजनीति/आरक्षण की राजनीति का तथ्य भी शामिल है। बहुजन समाज पार्टी मुख्य तौर पर दलितों का राजनीतिक संगठन है। इस दल का भारतीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि दलितों का बहुत बड़ा भाग इस दल का मुख्य समर्थन आधार है। दलितों का मुख्य प्रतिनिधि होने के कारण लगभग सभी राजनीतिक दल बहुजन समाज पार्टी से चुनावी समझौते करने के लिए पूर्ण इच्छुक होते हैं। उन्हें इस राजनीतिक तथ्य की जानकारी है कि दलितों के सहयोग के बिना वह राजनीतिक शक्ति बनाने में सफल नहीं हो सकते हैं। इसलिए वह जहां दलितों के सर्वांगीण विकास के लिए अपने चुनाव घोषणा-पत्रों में वादे करते हैं, वहीं बहुजन समाज पार्टी से चुनावी समझौते करने के लिए हर तरह का सम्भव यत्न करते हैं।

भारतीय राजनीति पर धर्म का प्रभाव (Impact of Religion on Indian Politics)

भारतीय राजनीति को धर्म व्यापक रूप से प्रभावित करता है। भारतीय राजनीति पर धर्म के प्रभाव की व्याख्या कुछ इस प्रकार की जा सकती है-

1. धार्मिक आधार पर राजनीतिक दलों का गठन (Formation of Political Parties on Religious Basis) - धर्म का राजनीतिक दलों पर प्रभाव तो हो सकता है, लेकिन कुछ राजनीतिक दलों से तो इसका अटूट सम्बन्ध है। भारत में कई राजनीतिक दलों का गठन धर्म के आधार पर हुआ है। मुस्लिम लीग, रामराज्य परिषद्, हिन्दू महासभा, शिव सेना आदि दलों का निर्माण धार्मिक आधार पर ही हुआ है। स्वाभाविक रूप से ऐसे राजनीतिक दल धर्म को राजनीति में प्रधानता देंगे। भारत में इस प्रकार के दल धर्म के आधार पर चुनावों में उम्मीदवारों का चयन करते हैं और धर्म के नाम पर मतदाताओं से मत देने की अपील करते हैं।

2. चुनावों पर धर्म का प्रभाव (Impact of Religion on Elections) - भारत में अधिकांश राजनीतिक दल चुनावों में धर्म

के नाम पर मतदाताओं से मत देने की अपील करते हैं। यहाँ राजनीतिक दलों द्वारा जनता के अधिक-से-अधिक मत बटोरने के लिए मठाधीशों, इमामों, पादरियों एवं साधु-संतों से फतवे जारी कराए जाते हैं। मार्च, 1977, जनवरी, 1980 एवं नवम्बर, 1989 के लोक सभा चुनावों के समय दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही इमाम की भूमिका से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक नेता राजनीतिक दलों से अपने समुदाय के मतों का किस तरह सौदा करते हैं। इसी प्रकार, 16वीं लोक सभा के चुनावों में जिस प्रकार मतदाताओं का ध्रुवीकरण किया गया, उससे भारतीय जनता पार्टी चुनाव जीतने में सफल रही।

3. धार्मिक दबाव समूहों का अस्तित्त्व (Existence of Religious Pressure Groups) - आज अनेक धार्मिक संगठन राजनीति में दबाव समूहों की भूमिका निभाते नजर आते हैं। ये संगठन सरकार पर अपने समुदाय के पक्ष में कानून बनाने के लिए दबाव डालते हैं और अनेक अवसरों पर अनुकूल कानून बनवाने में सफल भी हो जाते हैं। वैसे तो यह कार्य थोड़ा-बहुत सभी धार्मिक संगठन करते आ रहे हैं, किन्तु जमायत-ए-उलेमा-ए-हिन्द, अमारत शरिया, जमायते इस्लामी इस कार्य में आगे हैं। इन संगठनों ने कम-से-कम तीन बातों-उर्दू भाषा को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करने, मुस्लिम पर्सनल ला में कोई संशोधन न किए जाने एवं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को अल्पसंख्यक संस्था का दर्जा दिया जाने के विषय में सरकारी नीतियों को प्रभावित करके एक दबाव समूह की भूमिका का ही निर्वाह किया है। इसी प्रकार विश्व हिन्दू परिषद, राष्ट्रीय सेवक संघ एवं बजरंग दल जैसे संगठन सरकार पर हिन्दुओं की माँगें मनवाने के लिए निरन्तर दबाव डालते रहते हैं।

4. पृथक राज्य की स्थापना की माँग (Demand for the Creation of Separate State) - भारतीय राजनीति में धर्म के आधार पर पृथक राज्यों की स्थापना की माँग भी की गयी है। अकाली दल के मास्टर तारासिंह वाले गुट ने जुलाई, 1965 में 'सेल्फ-डिटरमिण्ड स्टेट्स ऑफ सिक्खस विदिन दी यूनियन ऑफ इण्डिया' नामक प्रस्ताव पारित किया था। कुछ समय पश्चात् 11 दिसम्बर, 1966 को अकाली दल के इसी गुट ने 'सिख होमलैण्ड' का प्रस्ताव पारित किया था। इसी प्रकार 1970 में अकाली नेता जगजीत सिंह चौहान, जो लक्ष्मण सिंह गिल के मंत्रिमंडल में मंत्री रह चुके थे, ने 'खालिस्तान' का नारा बुलन्द किया था, जो 1980-81 तक आते-आते पृथक खालिस्तान की माँग में बदल गया था। 1982-83 में अकाली दल के एक गुट ने 'सिक्ख एज एक सैपरेट नेशन' नामक प्रस्ताव पारित किया था। 1986 में 'पंथक कमेटी' नामक एक आतंकवादी संगठन ने स्वर्ण मन्दिर परिसर में खालिस्तान राज्य की घोषणा की थी। इसी प्रकार नागालैण्ड के ईसाईयों की पृथक राज्य की माँग का आधार भी धार्मिक निष्ठा ही था।

5. सरकारों का धार्मिक आधार पर गठन (Formation of Governments on Religious Basis) - भारत में केन्द्र एवं राज्यों में सरकार का गठन करते समय इस बात को भी ध्यान रखा जाता है कि उसमें प्रमुख सम्प्रदायों एवं धार्मिक विश्वासों वाले व्यक्तियों को अवश्य ही प्रतिनिधित्व मिले। सरकार के धार्मिक आधार पर गठन अथवा निर्माण का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में जून, 1991 एवं मार्च, 2017 में सत्तारूढ भारतीय जनता पार्टी की सरकारों में भी एक-एक मुस्लिम व्यक्ति को शामिल किया गया था। केन्द्र सरकार में अल्पसंख्यक मंत्रालय का होना और इसे अल्पसंख्यक समुदाय के व्यक्ति को सौंपना, यह स्पष्ट करता है कि धर्म सरकारों के गठन के कार्य को किस तरह प्रभावित करता है।

6. उम्मीदवारों का चयन (Selection of Candidates)- भारत में कभी लोक सभा के लिए, तो कभी राज्य विधान सभाओं के लिए आम चुनाव, मध्यावधि चुनाव एवं उप-चुनाव होते रहते हैं। राजनीतिक दलों के पास इस बात को जानकारी होती है कि किस निवार्चन क्षेत्र में किस धर्म के कितने मतदाता निवास करते हैं। प्रायः सभी राजनीतिक दल निर्वाचन क्षेत्रों के लिए उम्मीदवारों का चयन करते समय इस बात पर पूरा-पूरा ध्यान देते हैं।

7. धार्मिक उत्सवों का राजनीतिक प्रयोग (Political Use of Religious Functions)- भारत में लम्बे समय से धार्मिक उत्सवों का राजनीतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जा रहा है। यहां रमजान के महीने में सभी राजनीतिक दलों के नेताओं द्वारा इफ्तार पार्टी का आयोजन किया जाता है। सच तो यह है कि इस मामले में नेताओं में एक होड़-सी लगी हुई है. ताकि मुस्लिम लोगों का विश्वास प्राप्त किया जा सके। इसी प्रकार मंत्रियों द्वारा अजमेर शरीफ में चादर चढ़ाना, धार्मिक उत्सवों का उद्घाटन करना, सरकार द्वारा हज यात्रियों को सब्सिडी देना, अमरनाथ यात्रियों को अनेक सुविधाएँ प्रदान करना, आदि कार्य राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही किए जाते हैं।

8. राज्य-राजनीति का धर्म पर प्रभाव (Impact of Religion on State Politics)- भारतीय राजनीति में धर्म का प्रभाव राज्य के स्तर पर और भी अधिक देखा जा सकता है। इसका उदाहरण पंजाब, केरल एवं उत्तर प्रदेश की राजनीति है। केरल की राजनीति का आवरण भले ही वामपंथी राजनीति में रंगा हुआ प्रतीत होता हो, किन्तु इसका अन्तरंग धार्मिक एवं साम्प्रदायिक गुटों के गठजोड़ से ही बनता है। केरल राज्य में कई ऐसे साम्प्रदायिक दबाव समूह; जैसे-नायर सर्विस सोसाइटी, श्री नारायण धर्म परिपालन युगम् और अनेक ईसाई संगठन क्रियाशील हैं, जो शासन की नौति को सशक्त रूप से प्रभावित करते हैं। धर्म के राजनीति पर प्रभाव का एक अन्य उदाहरण पंजाब प्रस्तुत करता है, जहाँ अकाली दल की आन्तरिक राजनीति सशक्त एवं समृद्ध शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के चुनावों के चारों ओर घूमती है। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति, जो गुरुद्वारों के प्रबंधन का कार्य देखती है, के चुनाव अकाली दल की राजनीति को प्रभावित करते हैं और अकाली दल की राजनीति पंजाब की राजनीति को प्रभावित करती है। पंजाब की राजनीति पर धर्म के प्रभाव का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि अकाल तख्त द्वारा जारी फरमान अकाली मुख्य मंत्री तक की किस्मत का फैसला करता है।

9. तुष्टिकरण की नीति (Policy of Appeasement) - भारत में राजनीतिक दल अपना वोट बैंक बनाने के उद्देश्य से धार्मिक अल्पसंख्यकों को प्रसन्न करने को नीति अपनाते हैं। मुस्लिम अल्पसंख्यकों को प्रसन्न करने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक दर्ज को बनाए रखा गया है और 'मुस्लिम पर्सनल लॉ' (Muslim Personal Law) में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। पी.वी. नरसिम्हा राव सरकार ने अपने शासन काल के अन्तिम दिनों में ईसाईयों के लिए आरक्षण की व्यवस्था करने के लिए राष्ट्रपति से एक अध्यादेश जारी करने की अपील की थी. किन्तु राष्ट्रपति ने अध्यादेश जारी करने से इनकार कर दिया था। इसी प्रकार मुस्लिम अल्पसंख्यकों को प्रसन्न रखने के लिए राजीव गांधी सरकार द्वारा शाहबानो मामले (1985) में आए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को बेअसर करने के लिए मुस्लिम महिला संरक्षण अधिनियम 1986 बनाया गया था। इसी राजीव गांधी सरकार ने अयोध्या में विवादित स्थल पर मन्दिर का शिलान्यास भी कराया था।

10. बहुसंख्यक सम्प्रदायवाद का विकास (Growth of Majority Communalism)- पिछले कुछ वर्षों से देश में बहुसंख्यक सम्प्रदायवाद का विकास हुआ है। जब कांग्रेस सरकार ने मुस्लिम लोगों को खुश करने और अपना वोट बैंक बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किए, तो इसकी प्रतिक्रियास्वरूप संघ परिवार से सम्बन्धित संगठनों द्वारा भारत को 'एक संस्कृति, एक राष्ट्र एवं एक समुदाय' (One Culture, One Nation and One People) बनाने का संकल्प लिया गया। इसी समय 'गर्व से कहो हम हिन्दू हैं' जैसे नारे भी दिए गए।

साम्प्रदायिकता का अर्थ एवं परिभाषाएं (MEANING AND DEFINITIONS OF COMMUNALISM)

साम्प्रदायिकता का अर्थ (Meaning of Communalism) - साम्प्रदायिकता का साधारण अर्थ अपने धार्मिक सम्प्रदाय (Religious Community) के प्रति वफ़ादार होना और उसकी भलाई के लिए हर सम्भव कार्य करना है। अपने सम्प्रदाय के प्रति अन्धविश्वासी श्रद्धा और उसकी भलाई की लालसा को साम्प्रदायिकता का नाम दिया जा सकता है, परन्तु साम्प्रदायिकता का यह अर्थ सकारात्मक स्वरूप का है और साम्प्रदायिकता के इस स्वरूप से कोई भी व्यक्ति घृणा नहीं करेगा। साम्प्रदायिकता का घृणात्मक पक्ष इसका निषेधात्मक पक्ष (Negative Aspect) है। निषेधात्मक पक्ष में साम्प्रदायिकता का अर्थ न केवल अपने सम्प्रदाय के हितों को विकसित करना ही है, अपितु अन्य सम्प्रदायों के हितों को हानि पहुंचाना भी इस पक्ष में शामिल है।

स्वतन्त्र भारत में साम्प्रदायिकता के कारण (CAUSES OF COMMUNALISM IN INDEPENDENT INDIA)

भारत में साम्प्रदायिकता के कुछ कारण हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है-

1. धार्मिक कट्टरता (Religious Orthodoxy) - साम्प्रदायिकता को जीवित रखने और प्रफुल्लित करने में भारतीय लोगों की अपनी धार्मिक कट्टरता का बहुत बड़ा हाथ है। लोग न केवल अपने धर्म के प्रति अन्धविश्वासी श्रद्धा रखते हैं, अपितु इसके साथ वे अपने साम्प्रदायिक कट्टरता की धुन में मग्न हुए अन्य धर्म के लोगों के प्रति घृणा की भावना भी व्यक्त करते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि घृणा धार्मिक कट्टरवाद को जन्म देती है।

2. असुरक्षा की भावना (Sense of Insecurity) - धार्मिक अल्पसंख्यकों में एक प्रकार की असुरक्षा की भावना पाई जाती है। उनके अन्दर यह शंका है कि भारत के हिन्दू बहुसंख्यक उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को नष्ट करना चाहते हैं। इस बहुसंख्यक वर्ग के प्रभुत्व (Dominance) से भयभीत हुए धार्मिक अल्पसंख्यकों के लोग अपने आपको संगठित करने का प्रयत्न करते हैं ताकि वे संगठित रूप में किसी अन्य धार्मिक सम्प्रदाय की आक्रमणकारी कार्यवाही का सामना करने के योग्य हो सकें।

3. राजनीति का खेल (Game of Politics)- " भारत में साम्प्रदायिकता को प्रफुल्लित करने में कई स्वार्थी राजनीतिज्ञों का हाथ है। प्रत्येक सम्प्रदाय में ऐसे राजनीतिक व्यक्ति विद्यमान है जो अपना नेतृत्व चमकाने के लिए और अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए साधारण लोगों की धार्मिक भावनाओं को अन्य धर्मों के विरुद्ध उकसाते हैं। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में साम्प्रदायिकता के विकास को राजनीति और कुछ राजनीतिज्ञों का आशीर्वाद प्राप्त है क्योंकि साम्प्रदायिकता का अस्तित्व उनके राजनीतिक हितों में होता है।

4. आर्थिक और सामाजिक पिछड़ापन (Economic and Social Backwardness) - यह एक व्यावहारिक सच्चाई है कि गरीब और पिछड़े वर्गों के लोगों पर धर्म का बहुत अधिक प्रभाव होता है। यहां तक कि वह अपनी गरीबी और अपनी मुसीबतों को भी अपने कर्मों का फल या भगवान् की देन समझते हैं। जब देश में कोई साम्प्रदायिक दंगा-फसाद होता है तो ऐसे गरीब और पिछड़े हुए लोग ही फसाद की तबाही का शिकार होते हैं। आर्थिक और सामाजिक पिछड़ापन साधारण लोगों में निराशता की भावना भी उत्पन्न करता है और उनकी यह भावना उनकी साम्प्रदायिक कट्टरता या उन्माद को और अधिक दृढ़ बनाने में सहायक सिद्ध होती है।

5. सरकारी अधिकारियों की अयोग्य भूमिका (Inefficient Role of Officials Organs) - साम्प्रदायिक दंगों का निरीक्षण करने वालों ने कई बार यह आरोप लगाया है कि वहां के अधिकारियों ने उस साम्प्रदायिक स्थिति को हल करने के लिए योग्य भूमिका नहीं अभिनीत की है। धार्मिक अल्पसंख्यकों के नेता अक्सर यह आरोप लगाते हैं कि पुलिस और असैनिक उच्च अधिकारी धार्मिक बहुसंख्यक से सम्बन्धित होने के कारण अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए कोई योग्य कार्यवाही नहीं करते हैं।

6. समाज अतिरिक्त कारक (Extra-Societal Factors) - भारत की साम्प्रदायिकता को विकसित करने में समाज-अतिरिक्त कारकों का भी प्रभाव है। कई ऐसी विदेशी ताकतें हैं जो भारत की आन्तरिक शान्ति को भंग करने की इच्छुक हैं। ऐसी विदेशी शक्तियों के प्रतिनिधि (Agents) गुप्त रूप में हमारे देश में कार्य करते हैं। साम्प्रदायिक-संगठनों को वित्तीय सहायता देना और साम्प्रदायिक-फसाद करने के लिए और आवश्यक सामग्री प्रदान करना इन विदेशी प्रतिनिधियों का गुप्त कार्य है। हमारा पड़ोसी देश पाकिस्तान भी भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रफुल्लित करने के लिए काफ़ी उत्तरदायी है। पाकिस्तानी मीडिया से भारत सरकार और विशेष कर हिन्दू नेताओं के विरुद्ध ऐसा प्रचार किया जाता है जो भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता को और अधिक उत्तेजित करने का कारण बनता है।

साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय (Measures to Prevent Communalism)- स्पष्ट है कि भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या गंभीर रूप धारण किए हुए है। बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता के कारण कुछ सम्प्रदाय राष्ट्र की मुख्य धारा से हटते जा रहे हैं और इनमें अलगाववाद की प्रवृत्तियाँ पैदा हो रही हैं। साम्प्रदायिकता देश की एकता एवं अखण्डता की जड़ों को कमजोर कर रही हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए प्रभावशाली कदम उठाने की आवश्यकता है। भारत में साम्प्रदायिकता के प्रभाव को कम करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं-

1. साम्प्रदायिक आधार पर गठित राजनीतिक दलों एवं अन्य संगठनों पर पाबन्दी लगायी जानी चाहिए।

2. चुनाव आयोग द्वारा राजनीतिक दलों के लिए आचार संहिता (Code of Conduct) तैयार की जानी चाहिए और इसका कठोरता से पालन करवाया जाना चाहिए।

3. साम्प्रदायिकता के प्रभाव को कम करने के लिए अल्पसंख्यक लोगों की सामाजिक-आर्थिक दशा में सुधार किया जाना आवश्यक है, क्योकि सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन भी साम्प्रदायिकता का मुख्य कारण होता है।

4. साम्प्रदायिकता की भावना को कम करने के लिए स्कूलों एवं कॉलेजों में छात्रों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए. जिससे उनमें धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का विकास हो। इस सम्बन्ध में रेडियो एवं दूरदर्शन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

5. साम्प्रदायिकता की भावना को कम करने के लिए आवश्यक है कि राजनीतिज्ञों एवं धार्मिक नेताओं द्वारा सकारात्मक भूमिका निभायी जाए। इनके द्वारा लोगों को आपसी भाई-चारा, शांति एवं सहनशीलता का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए।

6. साम्प्रदायिकता की भावना को समाप्त करने के लिए सरकार द्वारा राज्य एवं जिला स्तर पर 'शांति परिषदें' (Peace Councils) स्थापित की जानी चाहिएँ। इन परिषदों में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि, सामाजिक कार्यकर्ता एवं सिविल सोसाइटी के लोग शामिल होने चाहिएँ। इनकी नियमित बैठकें होनी चाहिएँ, जिससे कि साम्प्रदायिक सद्भावना को बनाए रखने के उपायों पर विचार किया जा सके और इन उपायों को लागू किया जाए।

7. साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए विशेष पुलिस बल (Special Police Force) का गठन किया जाना चाहिए, और इसमें सभी सम्प्रदायों के व्यक्ति शामिल होने चाहिएँ। ऐसे पुलिस बल को साम्प्रदायिक दंगों से निपटने के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

8. साम्प्रदायिक अपराधों से निबटने के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किए जाने चाहिएँ। साधारण न्यायालयों के पास अधिक कार्य-भार होने के कारण मुकदमों के निर्णय में लम्बा समय लग जाता है, जिससे निर्णय का असर कम हो जाता है।

9. भारत में पिछले कुछ वर्षों से सिद्धान्तहीन राजनीति का विकास हुआ है, जिसके तहत नेताओं द्वारा अपने संकीर्ण हितों की पूर्ति के लिए धर्म का प्रयोग किया गया है। ऐसे में 'सिद्धांतों पर आधारित' (Value-based) राजनीति का विकास किया जाना आवश्यक है।

10. साम्प्रदायिक भावना को कम करने के लिए लोगों में राष्ट्रीय भावनाओं का विकास किया जाना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समाचार-पत्र, रेडियो, दूरदर्शन एवं शिक्षण संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद (Regionalism in Indian Politics)

साधारण शब्दों में, **क्षेत्रवाद** से हमारा अभिप्रायः किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों की उस भावना से होता है. जो उन्हें अपने क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए प्रेरित करती है। भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में क्षेत्रवाद एक अपभ्रंश प्रयोग है, जिसका **अभिप्राय** है- राष्ट्र की तुलना में किसी विशेष क्षेत्र अथवा राज्य की अपेक्षा किसी छोटे क्षेत्र के प्रति लगाव, भक्ति या विशेष आकर्षण ही क्षेत्रवाद है।

डॉ. डी.सी. गुप्ता के अनुसार "क्षेत्रवाद का अर्थ देश की तुलना में किसी विशेष क्षेत्र के साथ अनुराग है।" इस तरह क्षेत्रवाद राष्ट्रीयता की भावना का विलोम है, जिसका उद्देश्य होता है-संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थों की पूर्ति। भारतीय राजनीतिक परिपेक्ष्य में यह एक ऐसी अवधारणा है, जो राष्ट्रीय एकीकरण को समाप्त करते हुए पृथकतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है।

क्षेत्रवाद के रूप (Forms of Regionalism)

प्रमुख तौर पर, भारत में क्षेत्रवाद निम्नलिखित तीन रूपों में प्रकट हुआ है-

1. भाषाई क्षेत्रवाद (Linguistic Regionalism) - भारत में भाषाई क्षेत्रवाद को उत्पन्न एवं विकसित करने में राज्यों का भाषा के आधार पर पुनर्गठन एक प्रमुख कारण रहा है। भाषाई विवाद स्वतंत्रता से पूर्व ही राजनीति का एक प्रमुख मुद्दा बन गया था। संविधान के निर्माण के दौरान ही भाषा के आधार पर राज्यों के गठन की माँग जोर पकड़ने लगी थी। 19 अक्टूबर, 1952 में तेलुगू भाषी लोगों के लिए अलग राज्य की माँग को लेकर प्रसिद्ध गांधीवादी नेता पोट्टी श्रीरामुलु ने आमरण अनशन

किया। 56 दिन के अनशन के पश्चात् 15 दिसम्बर, 1952 को उनका स्वर्गवास हो गया, जिसके कारण इस आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। अन्ततः 1 अक्टूबर, 1953 को आंध्र प्रदेश की स्थापना कर दी गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक क्षेत्रों से भाषा के आधार पर अलग राज्यों के गठन की माँगें आनी आरम्भ हो गयीं और इसके लिए आन्दोलन भी आरम्भ हो गए।

इन आन्दोलनों के परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार ने 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन किया। इस आयोग के अध्यक्ष जस्टिस फजल अली और सदस्य के.एम. पाणिकर एवं एच.एन. कुँजरू थे। इस आयोग की सिफारिश पर 1956 में भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया, जिसके फलस्वरूप 14 राज्य और छः संघीय क्षेत्र अस्तित्व में आए। इस आयोग की सिफारिशों के मद्देनज़ 1960 में तत्कालीन बम्बई राज्य का विभाजन करके महाराष्ट्र एवं गुजरात राज्य स्थापित किए गए। इसी प्रकार 1 नवम्बर, 1966 को तत्कालीन पंजाब राज्य का विभाजन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप पंजाब एवं हरियाणा नामक राज्य अस्तित्व में आए। इस तरह भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होता गया और भारतीय संघ के राज्यों की संख्या बढ़ती गयी। वर्तमान (जनवरी, 2025) में 28 राज्य एवं सात संघीय क्षेत्र मिलकर भारतीय संघ का निर्माण करते हैं।

2. सुरक्षात्मक क्षेत्रवाद (Protective Regionalism)- कई राज्यों में सुरक्षात्मक क्षेत्रवाद का विकास हुआ है। सुरक्षात्मक क्षेत्रवाद का आर्थिक आधार रहा है। इसका जन्म उन राज्यों में हुआ, जहाँ पर दूसरे राज्यों से आए लोगों ने व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योगों पर अपना अधिकार जमा लिया था और जहाँ स्थानीय लोग बाहरी लोगों की तुलना में आर्थिक रूप से पिछड़ गए थे। इस प्रकार के क्षेत्रवाद का आरम्भ देश की वाणिज्य राजधानी कहलाने वाले मुम्बई शहर से हुआ। महाराष्ट्र में 1966 में शिव सेना ने मराठियों की रक्षा के लिए संघर्ष छेड़ दिया। शिव सेना ने इस बात पर बल दिया कि मराठी केवल उन होटलों में जाएँ. जो मराठियों द्वारा चलाए जा रहे हैं और शहर में मराठियों को ही मकान किराए पर दिए जाएँ। महाराष्ट्र में शिव सेना की तरह, आंध्र प्रदेश में तेलंगाना प्रजा समिति और असम में अखिल असम विद्यार्थी परिषद एवं सर्व असम गण संग्राम परिषद् आदि की गतिविधियाँ सुरक्षात्मक क्षेत्रवाद के रूप में उभरी।

3. अलगाववादी क्षेत्रवाद (Secessionist Regionalism)- अलगाववादी क्षेत्रवाद ऐसा क्षेत्रवाद है, जिसका निहितार्थ भारत संघ से अलग होना है। इस प्रकार के क्षेत्रवाद का प्रथम उदाहरण 5 जून 1960 को उस समय हमारे सामने आया, जब द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने मद्रास (चेन्नई) में यह माँग की कि मद्रास राज्य को भारत से अलग करके 'तमिल नाडु' नामक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया जाए। इसके कुछ समय पश्चात् इसने यह माँग की कि मद्रास, आंध्र प्रदेश, केरल एवं मैसूर राज्यों को भारत से अलग करके एक स्वतंत्र राज्य बना दिया जाए। जब उसकी इस माँग को पूरा समर्थन नहीं मिला, तो उसने यह माँग छोड़ दी। 1960 के दशक में ही मिजोरम में भी भारत से पृथक होने के लिए आन्दोलन चलाया गया। यही बात नागालैण्ड में भी देखने को मिली।

1980 के दशक में पंजाब में अलगाववादी क्षेत्रवाद की राजनीति के परिणामस्वरूप अनेक हिंसक घटनाएँ हुई। अन्त में यहाँ अमृतसर स्थित स्वर्ण मन्दिर परिसर में सेना को हस्तक्षेप करना पड़ा, जिसके कारण प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी को अपनी जान गंवानी पड़ी। अलगाववादी क्षेत्रवाद जम्मू-कश्मीर में आरम्भ से ही चला आ रहा था, किन्तु पिछले 25-30 वर्षों में कश्मीर में अलगाववादी शक्तियों और अधिक सक्रिय हुई है। भारत में जारी अलगाववादी क्षेत्रवाद को उभारने में पड़ोसी देश पाकिस्तान भी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। यदि स्पष्ट रूप से कहा जाए तो कश्मीर में अलगावादी शक्तियों को पाकिस्तान का संरक्षण प्राप्त है।

क्षेत्रवाद के जन्म के कारण (Causes of the Rise of Regionalism)

क्षेत्रवाद के जन्म के मुख्य कारण हैं-

1. भौगोलिक कारण (Geographical Causes) - भारत में क्षेत्रवाद की भावना को जन्म देने में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारकों की उल्लेखनीय भूमिका रही है। भारत में उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं बिहार आकार की दृष्टि से बड़े राज्य

हैं। ये राज्य भौगोलिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। यदि मध्य प्रदेश से मालवा क्षेत्र को और राजस्थान से मेवाड़ एवं मारवाड़ क्षेत्रों को अलग करके राज्य का दर्जा दे दिया जाए, तो भी ये नागालैंड से बड़े राज्य होंगे और ये अलग राज्य के रूप में अधिक विकास कर सकेंगे। संस्कृति भी क्षेत्रवाद को जन्म देने में सहयोग देती हैं। तमिल नाडु के लोग अपनी संस्कृति पर बहुत गर्व करते हैं। इसी आधार पर वे राम जैसे महापुरुष की आलोचना करते हैं। इसी कारण 1975 में तमिल नाडु में राम एवं लक्ष्मण के पुतले जलाए गए थे।

2. ऐतिहासिक कारण (Historical Causes) - स्वतंत्रता प्राप्ति के समय सैकड़ों देशी रियासतों को भारतीय संघ में मिला दिया गया था। आज भी इन रियासतों के लोग यह महसूस करते हैं कि यदि उनकी रियासत एक पृथक राज्य होती. तो वे अधिक लाभ की स्थिति में होते। इसी प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले देशी रियासतों के मध्य जो कलह या टकराव रहता था, वह आज भी इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के एक-दूसरे के समीप आने में बाधा बना हुआ है। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत के लोग यह मानते हैं कि उत्तर के लोगों ने उन पर शासन किया है। दूसरे शब्दों में, भारत का इतिहास क्षेत्रों के आधार पर भिन्न-भिन्न है और यह अभी भी भारतीय राजनीति को प्रभावित करता है।

3. सांस्कृतिक कारण (Cultural Causes) - भारत विश्व का ऐसा देश है, जहाँ सर्वाधिक सांस्कृतिक विविधता देखने को मिलती है। यहाँ उत्तर के पहाड़ी राज्यों-जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड की संस्कृति मैदानी राज्यों की संस्कृति से एकदम भिन्न है। पूर्वोत्तर राज्य, जिन्हें 'सात बहनों' के नाम से जाना जाता है, की अपनी अलग ही संस्कृति है। ऐसे किसी राज्य या क्षेत्र में रहने वाले लोग स्वय को दूसरे राज्यों या क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से अलग महसूस करते है. जिसके कारण इनका अपने क्षेत्र से लगाव हो जाता है।

4. आर्थिक कारण (Economic Causes)- भारत में आर्थिक कारक भी क्षेत्रवाद के उदय के लिए जिम्मेदार रहे हैं। देश में कई ऐसे राज्य हैं, जहाँ आर्थिक असंतुलन देखने को मिलता है अर्थात् एक ही राज्य के कुछ क्षेत्र साधनसम्पन्न हैं, तो दूसरे क्षेत्र साधनहीन। ऐसी स्थिति में साधनहीन क्षेत्रों के लोगों में असन्तोष जन्म लेने लगता है और वे विकास के नाम पर अलग राज्य की माँग करने लगते हैं। विभिन्न क्षेत्रों के मध्य आर्थिक विषमताएँ उत्पन्न करने में नेताओं का भेदभावपूर्ण व्यवहार काफी हद तक जिम्मेदार रहा है, क्योंकि ये अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों का ही विकास करते रहे हैं।

5. राजनीतिक कारण (Political Causes)- देश में राजनीतिक कारणों से भी क्षेत्रवाद का जन्म हुआ है। राजनीतिज्ञ यह सोचते हैं कि जिन क्षेत्रों से उनका संबंध हैं, यदि वे पृथक राज्य बन जाएँगे, तो उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति आसानी से हो सकेगी। क्षेत्रीय दलों; जैसे डी.एम.के., अकाली दल, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, शिव सेना आदि ने राजनीतिक कारणों से क्षेत्रवाद की भावना को हवा दी है। दूसरी ओर केन्द्र सरकार के कुछ राज्यों के साथ सौतेले व्यवहार ने भी क्षेत्रवाद की भावना को जन्म दिया है।

6. भाषावाद (Linguism)- भारत में 22 भाषाओं को संविधान द्वारा मान्यता प्रदान की जा चुकी है। इनके अलावा भी देश में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। भारत सरकार ने भाषा संबंधी विवादों को सुलझाने के काफी प्रयास किए हैं। उदाहरण के लिए इसने पहले 1953 में आंध्र प्रदेश का गठन किया और बाद में 1956 में भाषा के आधार पर सभी राज्यों का पुनर्गठन किया। इसके बावजूद भी, यह समस्या नहीं सुलझ पायी और भाषा के आधार पर अलग राज्यों को स्थापना की माँगें की जाती रहीं। भाषा के आधार 1960 में बम्बई राज्य को महाराष्ट्र एवं गुजरात में विभक्त किया गया। भाषा के आधार पर अकाली दल ने 'पंजाबी सूबे' की स्थापना की माँग की, जिसकी परिणति 1 नवम्बर, 1966 को तत्कालीन पंजाब राज्य के विभाजन के रूप में हुई।

7. जाति एवं धर्म (Caste and Religion) — देश में जाति एवं धर्म ने भी क्षेत्रवाद को प्रोत्साहन दिया है। भारत में मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने से जातिवाद की प्रवृत्ति बड़ी है। जिन क्षेत्रों में किसी एक जाति की बहुलता होती है. वहाँ क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति अधिक दिखायी देती है। हरियाणा एवं महाराष्ट्र में जातीय तत्त्व क्षेत्रवाद की भावना को बढ़ाने में सहयोगी रहा है। यहाँ जाति की तरह, धर्म भी क्षेत्रवाद की भावना को बढ़ाने में उल्लेखनीय भूमिका अभिनीत कर रहा है। देश के जिन क्षेत्रों में एक धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं, वे संगठित होकर अलग राज्य की माँग करने लगते हैं, क्योंकि उन्हें ऐसा लगता है

कि अलग राज्य में उनके हित सुरक्षित रह सकते हैं। पंजाची सूबे की माँग के पीछे, यह भी एक कारण रहा था।

8. अन्तर्राज्यीय झगड़े (Inter-State Disputes)- देश के अनेक राज्यों के मध्य जल, भू-प्रदेश के बँटवारे एवं राजधानी के हस्तांतरण को लेकर विवाद जारी हैं। राजनीतिक दलों ने इन विवादों को राजनीतिक रंग प्रदान करके क्षेत्रवाद को जन्म दिया है। पंजाब एवं हरियाणा के बीच चण्डीगढ़ एवं सतलुज-यमुना सम्पर्क नहर का विवाद, तमिल नाडु एवं कर्नाटक के बीच कावेरी जल विवाद, उत्तराखण्ड एवं उत्तर प्रदेश के मध्य उधम सिंह नगर एवं हरिद्वार को लेकर उभरे विवाद ने क्षेत्रवाद को जन्म दिया है।

9. राजनीतिक दल (Political Parties)- भारत में अक्सर क्षेत्रीय दल अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए क्षेत्रवाद को बढ़ावा देते हैं। क्षेत्रवाद के विकास में अनेक राजनीतिक दलों ने प्रमुख भूमिका निभायी है। इन दलों में डी.एम.के., ऑल इण्डिया अन्ना डी.एम.के., अकाली दल, तेलुगू देशम, असम गण परिषद्, इण्डियन नेशनल लोक दल, नेशनल कांफ्रेस, पीपुल्स डेमोक्रोटिक पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल (यू), समाजवादी पार्टी, उत्तराखण्ड क्रान्ति दल, राष्ट्रीय लोक दल आदि शामिल हैं।

भारतीय राजनीति पर क्षेत्रवाद का प्रभाव (Impact of Regionalism on Indian Politics)

क्षेत्रवाद की भावना ने अनेक प्रकार से भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है; जैसे-

1. गठबन्धन की राजनीति (Politics of Coalition)- भारतीय राजनीति में क्षेत्रवाद ने गठबंधन को राजनीति को जन्म दिया है। क्षेत्रवाद की भावना के कारण प्रायः मतदाता क्षेत्रीय दलों के पक्ष में मतदान करते हैं, जिसके कारण लोक सभा के चुनावों में राष्ट्रीय दलों को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो पाता। ऐसे में राष्ट्रीय दल क्षेत्रीय दलों के सहयोग से सरकार का निर्माण करते हैं। एक समय 'राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन' में एक राष्ट्रीय दल के अलावा 20 से अधिक क्षेत्रीय दल शामिल थे। इसी प्रकार कांग्रेस के नेतृत्व वाले 'संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन' में भी अनेकों क्षेत्रीय दल शामिल रहे। पिछले 20-25 वर्षों की राजनीति पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षेत्रीय दल देश की राजनीति को दिशा देने में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।

2. मंत्रि-परिषद का निर्माण (Formation of Council of Ministers)- भारत में मंत्रि-परिषद् के निर्माण के समय क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। मंत्रि-परिषद् में प्रायः सभी क्षेत्रों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाता है। सामान्यता यह शिकायत की जाती रही है कि पी.वी. नरसिम्हा राव एवं एच.डी. देवेगौड़ा को छोड़कर अब तक कोई भी प्रधान मंत्री दक्षिणी राज्यों से नहीं बना है। प्रधान मंत्री को अपने मंत्रि-परिषद में प्रत्येक क्षेत्र को उसके महत्व के आधार पर प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। ऐसा कहा जाता है कि प्रधान मंत्री अपने मंत्री चुनने में स्वतंत्र है; क्षेत्र चुनने में नहीं।

3. नए राज्यों के गठन की माँग (Demand for the Formation of New States)- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के अनेक क्षेत्रों में नए राज्यों के गठन की माँगें की गयीं। इस क्रम में पहले आंध्र प्रदेश के गठन की माँग सामने आयी। इसके बाद 1956 में राज्यों का पुनर्गठन किया गया। इसके बाद 1966 में पंजाब एवं हरियाणा का और 2000 में छत्तीसगढ़, झारखण्ड एवं उत्तराखण्ड का गठन हुआ, किन्तु इसके बाद भी यह माँग जारी रही। जून, 2014 में तेलंगाना की स्थापना के बाद भारतीय संघ के राज्यों की संख्या बढ़कर 29 हो गयी थी। फिर भी, क्षेत्रीय आधार पर राज्यों के गठन की माँगें कम नहीं हुई हैं। अभी भी हरित प्रदेश, बुन्देलखण्ड, विदर्भ, पूर्वांचल, बोडोलैण्ड आदि राज्यों के गठन की माँग की जा रही है।

4. भाषावाद का जन्म (Origin of Linguism)- भारत में क्षेत्रवाद ने भाषावाद को जन्म दिया है। क्षेत्रीय भावनाओं के कारण दक्षिण के राज्यों ने हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनाने का विरोध किया, तो उत्तर के राज्यों ने अंग्रेजी भाषा का विरोध किया। यहाँ भाषा के प्रश्न पर उत्तर एवं दक्षिण के राज्य एक-दूसरे के सामने खड़े नजर आए। क्षेत्रीय भावनाओं के कारण स्वतंत्रता-प्राप्ति के 75 वर्षों के पश्चात् भी भारत में बोल-बाल की एक सामान्य भाषा का विकास नहीं हो पाया है।

5. अन्तर्राज्यीय विवादों का जन्म (Origin of Inter-State Disputes)- क्षेत्रवाद के कारण भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों के मध्य अनेक प्रकार के विवादों का जन्म हुआ है। क्षेत्रवाद के कारण मध्य प्रदेश, गुजरात एवं राजस्थान के मध्य नर्मदा नदी के

जल के बंटवारे का विवाद, और हरियाणा एवं पंजाब के मध्य यमुना-सतलुज लिंक नहर के निर्माण एवं चण्डीगढ़ के हस्तांतरण का विवाद जारी है। इसी प्रकार तमिल नाडु एवं कर्नाटक के बीच कावेरी नदी जल विवाद और कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं आंध्र प्रदेश के मध्य कृष्णा नदी जल विवाद जारी है।

6. अलगाववादी आंदोलनों का जन्म (Origin of Separatist Movements) - क्षेत्रीय भावनाओं के कारण अस्तित्व में आए क्षेत्रीय दलों एवं संगठनों ने कई पृथकतावादी(अलगाववादी) आंदोलन चलाए। 1950 में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने मद्रास के भारतीय संघ से अलग होने की माँग कर डाली, तो मिजो नेशनल फ्रंट ने स्वतंत्र मिजो राज्य की स्थापना के लिए आंदोलन छेड़ दिया था।

7. राजनीतिक अस्थिरता (Political Instability) - क्षेत्रवाद का भारतीय राजनीति पर एक प्रभाव यह पड़ा है कि इससे केन्द्र एवं अनेक राज्यों में राजनीतिक अस्थिरता का माहौल उत्पन्न हुआ है। 1989 से लेकर 2009 तक सम्पन्न छः लोक सभा चुनावों में मतदाताओं ने क्षेत्रीय भावनाओं के आधार पर मतदान किया और किसी भी राष्ट्रीय दल को स्पष्ट बहुमत प्रदान नहीं किया। इसका परिणाम यह हुआ कि इस दौरान केन्द्र में जो भी सरकारें गठित हुई, सभी क्षेत्रीय दलों के सहयोग से गठित हुई। इन सरकारों में कुछ सरकारों का तो अपना कार्यकाल पूरा होने से पहले ही पतन हो गया था, और कुछ ने जैसे-तैसे अपना कार्यकाल पूरा किया था।

8. क्षेत्रीय दलों का उदय (Rise of Regional Parties)- क्षेत्रवाद के फलस्वरूप देश में अनेक क्षेत्रीय दलों का गठन हुआ। चुनाव आयोग ने 15वीं लोक सभा के चुनावों के समय 40 क्षेत्रीय दलों को और 16वीं लोक सभा के चुनावों के समय 56 क्षेत्रीय दलों को मान्यता प्रदान की। इनमें डी.एम.के.ए., आल इण्डिया अन्ना डी.एम.के., मिजो नेशनल फ्रंट, असम गण परिषद्, इण्डियन नेशनल लोकदल, अकाली दल, तेलुगू देशम, नेशनल कांफ्रेंस, शिव सेना, समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल (यू) आदि प्रमुख हैं। क्षेत्रवाद के प्रभाव के कारण इन दलों को जन-समर्थन भी मिलता रहा है।

9. केन्द्र एवं राज्यों के बीच तनावपूर्ण संबंध (Tense Relations between Centre and States) - क्षेत्रवार के कारण केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों के बीच सम्बन्धों में कटुता आयी है। प्रत्येक क्षेत्र के हित-समूह, नेतागण, उद्योगपति या राजनीतिज्ञ अपने-अपने क्षेत्र के हितों को प्राथमिकता देते हैं और केन्द्र सरकार का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं। अगर केन्द्र सरकार किसी क्षेत्र की ओर थोड़ी भी उदारता दिखाएं, तो राज्य सरकारें नाराज हो जाती हैं। उदाहरण के लिए झारखण्ड राज्य की स्थापना के मुद्दे ने केंन्द्र सरकार एवं बिहार सरकार के बीच तीव्र कटुता पैदा कर दी थी। क्षेत्रवाद के फलस्वरूप भारत में सहकारी संघवाद के स्थान पर संघर्षात्मक संघवाद (Confrontational Federalism) की स्थापना हुई है।

क्षेत्रवाद के उन्मूलन के तरीके (Means for the Eradication of Regionalism)

इसे समाप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जाने चाहिएँ-

1. सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास (Balanced Development of all Regions)- क्षेत्रवाद के जन्म का एक प्रमुख कारण रहा है- देश के विभिन्न राज्यों/क्षेत्रों का असंतुलित विकास। इसका अर्थ है-कुछ राज्यों/क्षेत्रों का अधिक विकास हो जाना और कुछ का कम विकास होना या बिल्कुल भी विकास न होना। सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए और इस प्रकार की नीति बनानी चाहिए, जिससे कि देश के अविकसित या अल्प विकसित क्षेत्रों का भी विकास हो सके।

2. अन्तर्राज्यीय विवादों का शीघ्र हल (Quick Solution of Inter-State Disputes) - भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों के मध्य नदियों के जल के बँटवारे को लेकर या किसी क्षेत्र/नगर के हस्तांतरण को लेकर जो विवाद चले आ रहे हैं, उनका शीघ्र हल किया जाना चाहिए, ताकि नेताओं के लिए क्षेत्रीय भावनाएँ भड़काने के मुद्दे समाप्त हो जाएँ।

3. भाषायी विवादों की समाप्ति (End of Linguistic Disputes)- भारत में भाषायी विवाद भी क्षेत्रवाद की भावना को

जन्म देते हैं। हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषाएँ उत्तर एवं दक्षिण के लोगों के मध्य मन-मुटाव पैदा करती हैं। सरकार को भाषा के संबंध में त्रि-भाषा फार्मूले को दृढ़तापूर्वक लागू करना चाहिए और सभी क्षेत्रीय भाषाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान करनी चाहिए।

4. अल्पसंख्यकों की शिकायतों का निवारण (Redressal of the Grievances of Minorities) – भारत में क्षेत्रवाद को जन्म देने एवं विकसित करने में धार्मिक एवं भाषायी अल्पसंख्यकों का भी हाथ रहा है, अतः क्षेत्रवाद को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि इनकी उचित शिकायतों का निवारण किया जाए। ऐसा किए जाने पर अल्पसंख्यक वर्ग देश की मुख्य धारा में रहेंगे और किसी प्रकार के पृथकतावादी आंदोलन को हवा नहीं देंगे।

5. केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच संवाद (Dialogue between Centre and State Governments) -क्षेत्रवाद को दूर करने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों के बीच संवाद का वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए, ताकि दोनों के बीच पारस्परिक विश्वास बना रहे और ऐसे अवसर उत्पन्न न हों, जहाँ दोनों एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाएँ। इसके लिए केन्द्र द्वारा शुरूआत की जानी चाहिए।

क्षेत्रवाद पर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव (IMPACT OF INDIAN POLITY ON REGIONALISM)

क्षेत्रवाद पर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रभावों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. भाषावी संगठन क्षेत्रवाद के विकास हेतु प्रेरणा (Linguistic Organisation is an inspiration for Regionalism)- भारतीय संघ का गठन भाषायी आधार पर किया गया है। यह गठन वास्तव में दोषपूर्ण हैं क्योंकि राज्यों के लिए एक भाषायी राज्य होना लगभग असम्भव है। कई राज्यों का दो-भाषायी और कुछ अन्य राज्यों का बहु-भाषीय रूप भी है। ऐसे राज्यों में क्षेत्रवाद को प्रेरणा मिलनी स्वाभाविक है। क्योंकि जिन भाषाओं के आधार पर कुछ क्षेत्रों का गठन राज्य के रूप में नहीं किया गया है, उन क्षेत्रों के लोग अपने पृथक् भाषायी राज्य की मांग अवश्य करेंगे।

2. एकात्मकवादी प्रवृत्तियां क्षेत्रवाद को प्रोत्साहन देती हैं (Unitarian Tendencies Encourage Regionalism)- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था संरचना में तो अवश्य ही संघात्मक है, परन्तु वास्वत में इसका स्वरूप एकात्मक प्रतीत होता है। भारतीय संविधान में कई ऐसी व्यवस्थाएं हैं जो संघात्मक प्रणाली में नहीं मिलती। राज्यों को बहुत कम शक्तियां दी गई हैं और उनके वित्तीय साधन भी बहुत सीमित हैं। कई परिस्थितियों में केन्द्र सरकार राज्यों के शासन को अपने हाथ में ले सकती है। अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में राष्ट्रपति शासन क्रियान्वित किया जा सकता है। राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं और उन्हें राष्ट्रपति द्वारा ही पदच्युत किया जा सकता है। ऐसी एकात्मक प्रवृत्तियों ने कई राज्यों में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के विकास को प्रोत्साहित किया है। इसके साथ कई राज्यों के लोगों के दिल में बढ़ रहे केन्द्रवाद के विरुद्ध रोष भी उत्पन्न हुआ और ऐसे रोष ने क्षेत्रवाद की भावना को पर्याप्त सीमा तक प्रोत्साहित किया है।

3. केन्द्र सरकार और क्षेत्रवाद (Central Government and Regionalism)- भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् नवम्बर, 1989 तक केन्द्र में शासन का नेतृत्व कांग्रेस दल के हाथों में ही रहा था। मार्च, 1977 से जनवरी, 1980 तक लगभग 2 वर्षों का ऐसा समय था जब गैर-कांग्रेसी सरकारों ने केन्द्रीय सरकार का संचालन किया। संविधान निर्माताओं ने पहले ही केन्द्र सरकार को अत्यधिक शक्तियां दी थीं। परन्तु कांग्रेस की सरकार ने केन्द्र को अत्यधिक शक्तिशाली बनाने हेतु कई राजनीतिक और संवैधानिक पग उठाए थे। बढ़ रहे केन्द्रवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था और यह प्रतिक्रिया क्षेत्रवाद की भावना और क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के विकास के रूप में दृष्टिगोचर हुई। इसके अतिरिक्त कांग्रेस सरकार की नीतियों ने क्षेत्रीय असन्तुलन (Regional Imbalance) को जन्म दिया। कई क्षेत्र प्रत्येक पक्ष से अधिक विकसित हो गए, परन्तु कुछ अन्य क्षेत्रों की नवीन संस्कृति के विकास का उजाला भी नसीब न हुआ। ऐसी स्थिति ने कुछ क्षेत्रों के लोगों में गहन रोष उत्पन्न किया और कई स्थानों पर उस रोष ने राजनीतिक आन्दोलनों का रूप धारण किया। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि कांग्रेस सरकार की केन्द्रवादी नीतियां भी क्षेत्रवाद के विकास हेतु पर्याप्त सीमा तक उत्तरदायी थीं।

★★----------★★

Important & Assignment Questions (2024-25)

B.A- Political Science (Major Course)

Paper- Indian Politics (24POLM402DS01)

Semester - 2nd

Unit -I

1. भारतीय संविधान न तो पूर्ण रूप से संघात्मक है, न ही पूर्ण रूप से एकात्मक है बल्कि दोनों का सम्मिश्रण है । इस कथन की व्याख्या कीजिए।
(The Indian Constitution is neither purey Federal, nor purely Unitary but is a combination of both. Explain this statement.)

अथवा (OR)

भारत का संविधान संघीय रूप में संघात्मक है , परंतु भाव में एकात्मक है । इस कथन की विवेचना कीजिए।

(The Constitution of India is federal in form, but unitary in spirit. Explain this statement.)

2. भारत में केंद्र राज्यों के मध्य प्रशासनिक , विधायी एवं वित्तीय संबंधों की व्याख्या कीजिए।

(Explain the Administrative , Legislative and Financial relations between the centre and the states in India.)

3. भारतीय संघवाद की उभरती/नवीन प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

(Describe the emerging/new trends of Indian federalism.)

Unit-II

4. भारतीय चुनाव प्रणाली के प्रमुख दोष क्या है? चुनाव प्रणाली में सुधार हेतु क्या कदम उठाए गए हैं? अपनी ओर से भी सुझाव दें।

(What are the main defects of the Indian election system? What steps have been taken to improve the election system? Give your suggestions too.)

5. दल-बदल के कारण क्या है ? इसे रोकने के लिए भारतीय संविधान में कौन-से उपाय किए गए हैं?

(What are the reasons for defection? What measures have been taken in the Indian Constitution to prevent it?)

6. भारतीय चुनाव आयोग के संगठन तथा कार्यों का वर्णन करें। साथ ही भारतीय चुनाव प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं बताइए।

(Describe the organisation and functions of the Election Commission of India. Also tell the main features of the Indian electoral system.)

7. भारत में मतदान व्यवहार के विभिन्न निर्धारक तत्वों का वर्णन कीजिए।

(Describe the various determinants of voting behaviour in India.)

Unit-III

8. भारतीय दलीय प्रणाली की क्या समस्याएं हैं? भारत में विरोधी दलों की भूमिका का वर्णनकीजिए।

(What are the problems of the Indian party system? Describe the role of opposition parties in India.)

9. भारतीय दलीय प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं कौन-सी है ? भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका भी बताइए।

(What are the main features of Indian party system? Also explain the role of regional parties in Indian politics.)

10. भारत में हित अथवा दबाव समूहों की विशेषताएं, कार्य तथा काम करने के साधनों को बताइए।

(Explain the features, functions and means of working of interest or pressure groups in India.)

Unit-IV

11. भारतीय राजनीति पर जाति तथा भाषा के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

(Discuss the effects of caste and language on Indian politics.)

12. आरक्षण का भारतीय राजनीति पर प्रभाव बताइए । आरक्षण के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।

(Explain the effect of reservation on Indian politics. Give arguments in favour and against of Reservation.)

13. भारतीय राजनीति में धर्म तथा क्षेत्रवाद की भूमिका का वर्णन कीजिए।

(Describe the role of religion and regionalism in Indian politics.)

Unit-V

14. **लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions) —**

(i) भारतीय संविधान की दो एकात्मक विशेषताएं बताइए। (Mention two Unitary features of Indian constitution.)

(ii) भारतीय चुनाव प्रणाली की दो विशेषताएं बताइए। (Mention two features of Indian electoral system.)

(iii) भारतीय दलयी प्रणाली के कोई दो दोष बताइए। (Mention any two demerits of Indian Party system.)

(iv) दल-बदल के दो कारण बताइए। (Mention two reasons for defection.)

(v) भारत में आरक्षण नीति (Reservation policy in India)

(vi) संघ(केंद्र) सूची (Union (Central) List)

(vii) राज्य स्वायत्तता (State autonomy)

(viii) धर्म-निरपेक्षता (Secularism)

(ix) गठबंधन की राजनीति (Coalition Politics)

(x) राष्ट्रीय दल (National parties)

(xi) सरकारिया आयोग (Sarkaria Commission)

(xii) राजनीति का अपराधीकरण (Criminalization of politics)

(xiii) क्षेत्रवाद (Regionalism)

(xiv) संघवाद का अर्थ बताएं (Explain the meaning of federalism.)